जून 2002

सी. एस. आई. आर. तथा डी. बी. टी. नई दिल्ली के आंशिक अनुदान द्वारा प्रकाशित

मूल्य : 7.00 रु०

विज्ञान

अप्रैल 1915 से प्रकाशित हिन्दी की प्रथम विज्ञान पत्रिका

विज्ञान परिषद् प्रयाग

विज्ञान

परिषद् की स्थापना 10 मार्च 1913
विज्ञान का प्रकाशन अप्रैल 1915
वर्ष 88 अंक 3
जून 2002

मूल्य
आजीवन व्यक्तिगत : 750 रुपये
आजीवन संस्थागत : 1,500 रुपये
त्रिवार्षिक : 210 रुपये
वार्षिक : 75 रुपये
यह प्रति : 7 रुपये

सभापति
डॉ० (श्रीमती) मंजु शर्मा

सम्पादक एवं प्रकाशक
डॉ० शिवगोपाल मिश्र
प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद् प्रयाग

मुद्रक
नागरी प्रेस
91/186, अलोपी बाग, इलाहाबाद
फोन : 502935, 500068

कम्प्यूटर कम्पोजिंग
शादाब खालिद

आवरण
चन्द्रा आर्ट्स

सम्पर्क
विज्ञान परिषद् प्रयाग
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद–211002
फोन : 460001 ई–मेल : vigyan1@sancharnet.in
वेबसाइट : www.webvigyan.com

विषय सूची

पर्यावरणीय सुरक्षा

डॉ0 एम.जी.के. मेनन

(डॉ0 एम.जी.के. मेनन द्वारा पर्यावरणीय सुरक्षा विषयक उद्‌गार एक साक्षात्कार में व्यक्त हुए हैं। यह साक्षात्कार गतवर्ष श्री बिमान बसु द्वारा लिया गया था– सम्पादक)

प्रश्न : पर्यावरणीय सुरक्षा का वास्तविक अर्थ क्या है ? क्या यह स्थानीय समस्या है, क्षेत्रीय अथवा वैश्विक समस्या है ?

उत्तर : पर्यावरण की समस्या स्थानीय होती है जैसे कि दिल्ली या मुम्बई या कलकत्ता या देहरादून की समस्याएँ अलग अलग हैं। किन्तु पर्यावरणीय समस्याएँ राष्ट्रीय स्तर पर भी होती हैं। वे बड़े पैमाने पर होती हैं– जैसे कि वन विनाश से उत्पन्न बाढ़ें। इसी तरह अनेक औद्योगिक स्थानों पर प्रदूषण की समस्या है। वैश्विक स्तर पर भी कुछ समस्याएँ हो सकती हैं– यथा जलवायु परिवर्तन, या ओजोन परत का क्षरण। इन समस्याओं में सभी लोगों की समान भागीदारी होती है। उदाहरणार्थ हरित गृह गैसों के लिए हम सभी जिम्मेदार हैं और इनके कारण ही ओजोन परत का क्षरण होता है। वस्तुतः ऐसी वैश्विक समस्याएँ दीर्घकालीन हैं और जो घटनाएँ घटती हैं उनको पहले से नहीं बताया जा सकता।

प्रश्न : जैसे कि ओजोन छिद्र ?

उत्तर : हाँ। ओजोन छिद्र संचित पर्यावरणीय समस्या है। जलवायु परिवर्तन भी ऐसी ही समस्या है। यह तो विगत 20 वर्षों से समझ में आने लगा है कि हरित गृह गैसें संचित हो रही हैं और इससे जलवायु परिवर्तन हो सकता है। अब हम यह समझने का प्रयास कर रहे हैं कि जलवायु परिवर्तन के क्या प्रभाव हो सकते हैं।

प्रश्न : क्या कोई एक राष्ट्र अकेले ही इस समस्या से निपट सकता है ?

उत्तर : नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता। उदाहरणार्थ जो अम्लीय वर्षा जर्मनी तथा स्कैंडीनेविया में हुई उसका सूत्रपात ब्रिटेन में हुआ। या जब चर्नोबिल दुर्घटना हुई तो समूचे उत्तरी तथा पश्चिमी यूरोप में रेडियोधर्मिता फैल गई। ये क्षेत्रीय समस्याएँ थीं। इसी तरह इंडोनेशिया में जंगलों में लगी आग से मलेशिया, सिंगापुर आदि प्रभावित हुए। इस तरह कई देश एकसाथ प्रभावित होने पर यह क्षेत्रीय समस्या कही जाएगी। किन्तु जलवायु परिवर्तन या ओजोन छिद्र से सम्पूर्ण मानवता प्रभावित होगी इसलिए यह वैश्विक समस्या है।

प्रश्न : आज विकसित तथा विकासशील देशों में द्वन्द्व चल रहा है। यद्यपि सीएफसी गैसों के उत्पादन एवं प्रयोग में अंकुश के लिए मान्ट्रियल प्रोटोकाल है किन्तु विकसित देश उसका पालन नहीं करना चाहते और विकासशील देश स्पर्धावश अपना जीवन स्तर उठाने के लिए लालायित हैं।

उत्तर : यह भली भाँति ज्ञात है कि वायुमण्डल में हरित गृह गैसों का अधिकाधिक संचय हो रहा है किन्तु लोग यह नहीं जानते कि उसका क्या परिणाम होगा। केवल भविष्यवाणियाँ हैं कि ताप में वृद्धि होगी जिससे समुद्र तल में वृद्धि होगी। जलवायु में परिवर्तन के फलस्वरूप कहीं ज्यादा वर्षा हो सकती है तो कहीं कम, कहीं प्रबल झंझावात आ सकते हैं आदि आदि। लोग कहते हैं कि ऐसी अनिश्चितताओं के लिए धन क्यों खर्चे। किन्तु कुछ लोगों का तर्क है कि हमें धन इसलिए खर्च करना चाहिए क्योंकि इनमें से अनेक घटनाएँ उत्क्रमणीय नहीं हैं। ये घटनाएँ अत्यन्त विशाल क्षेत्रों में होती हैं यथा सागरों में कार्बन का अकार्बनिक तथा

कार्बनिक रूप में बदलते रहना। विकसित देश अपनी इस जीवन शैली को बदलने को तैयार नहीं हैं जिसके वे अभ्यस्त हैं। किन्तु विकासशील देशों को ऊर्जा की निरन्तर आवश्यकता है जिसे वे जीवाश्म ईंधन जलाकर प्राप्त करते हैं। ये देश विकसित देशों को पर्यावरण प्रदूषण के लिए जिम्मेदार ठहराते हैं। इस तरह विकसित तथा विकासशील देशों के बीच बहस चलती रहेगी।

प्रश्न : भौम जल प्रदूषण की समस्या को आप कितनी गम्भीरता से लेते हैं ?

उत्तर : यह समस्या सचमुच बहुत गम्भीर है और हमें सावधान हो जाने की जरूरत है। विशेष चिन्ता का विषय है रसायनों खास करके भारी धातुओं का भौम जल में मिलना, जिससे वह पीने योग्य नहीं रह जाता। कभी कभी तो सिंचाई लायक भी नहीं। इतना ही नहीं, भौम जल का इतनी मात्रा में दोहन हो रहा है कि जल स्तर नीचे चला जा रहा है। हम जितना भौम जल निकाल रहे हैं उतना फिर से नीचे नहीं पहुँचाते। इसीलिए महात्मा गाँधी ने कहा था कि जल को ऊपर लाने के लिए बिजली का उपयोग न किया जाए। उनका विचार था कि यदि मनुष्य अपनी शक्ति का प्रयोग करेगा तो इतना अधिक जल नहीं निकाल पाएगा।

प्रश्न : क्या हमारे पास इतनी वैज्ञानिक जनशक्ति है कि हम पर्यावरणीय समस्याओं को सुलझा सकते हैं ?

उत्तर : हम एक अरब लोग हैं अतः यह प्रश्न पूछना कि हम समर्थ हैं कि नहीं, सार्थक नहीं लगता। आखिर संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे देश कुशल इंजीनियरों तथा वैज्ञानिक जनशक्ति के लिए भारत पर निर्भर हैं। इसीलिए अप्रवासी भारतीयों की उपादेयता है वहाँ। यही नहीं, चाहे जर्मनी हो या जापान, ये भी इसी कार्य के लिए भारत का मुँह ताकते हैं। हमें यह कहना छोड़ देना होगा कि 'सब ठीक है, सब बढ़िया चल रहा है।' हमें अपने बढ़े हुए अन्न उत्पादन, बढ़ी हुई आयु या स्वास्थ्य सेवा में प्रगति पर इतराना छोड़ देना होगा। हमें यह मानना होगा कि अभी भी हमारे यहाँ सबसे अधिक अशिक्षित जनता है। 30 करोड़ से अधिक लोग गरीबी स्तर के नीचे रह रहे हैं। हमें इसका ध्यान रखना होगा। ❑

राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी दिवस सम्पन्न

राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी दिवस के अवसर पर शनिवार 11 मई 2002 को अपरान्ह विज्ञान परिषद् प्रयाग में एक गोष्ठी का आयोजन किया गया जिसकी अध्यक्षता अवकाशप्राप्त उपनिदेशक, उद्यान (इलाहाबाद मण्डल) श्री दर्शनानन्द जी ने की। के.के. बिरला फाउंडेशन फेलोशिप से सम्मानित दैनिक हिन्दुस्तान के वरिष्ठ पत्रकार श्री धनंजय चोपड़ा कार्यकम के मुख्य वक्ता थे। गोष्ठी के आरंभ में परिषद् के प्रधानमंत्री डॉ0 शिवगोपाल मिश्र ने अतिथियों का स्वागत करते हुए आयोजन के उद्देश्य पर प्रकाश डाला। देवव्रत द्विवेदी ने अध्यक्ष तथा मुख्य वक्ता का माल्यार्पण द्वारा स्वागत किया। डॉ0 ईश्वर चन्द्र शुक्ल ने प्रौद्योगिकी विकास के विभिन्न पक्षों की चर्चा करते हुए संतुलित प्रगति पर बल दिया। श्री प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव ने जैव प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हुई प्रगति तथा उसके नैतिक एवं सामाजिक पक्षों पर विचार व्यक्त किए। मुख्य वक्ता श्री धनंजय चोपड़ा ने प्रौद्योगिकी दिवस से संबद्ध अपने रोचक अनुभव प्रस्तुत करते हुए भारत के परमाणु ऊर्जा कार्यकम के शांतिपूर्ण उद्देश्यों पर प्रकाश डाला।

सभाध्यक्ष श्री दर्शनानंद जी ने सभी वक्ताओं के विचारों से स्वयं को जोड़ते हुए प्रौद्योगिकी के सकारात्मक पक्ष को उजागर किया और कहा कि वर्तमान समय में प्रौद्योगिकी का उपयोग विवेकपूर्ण किया जाना चाहिए।

कार्यकम के अंत में परिषद् के प्रधानमंत्री डॉ0 शिवगोपाल मिश्र ने सभी के प्रति आभार ज्ञापित किया। इस अवसर पर सर्वश्री देवव्रत द्विवेदी, चन्द्रभान सिंह, उमेश कुमार शुक्ल, अशोक तिवारी, नरेन्द्र यादव, रजनीश सिंह, विजयेन्द्र दुबे, रमेश आदि उपस्थित थे।

–देवव्रत द्विवेदी

ओजोन विघटन का संकट

डॉ0 कृष्ण कुमार मिश्र

वर्तमान युग विज्ञान और प्रौद्योगिकी का युग है। दुनिया में भौतिक विकास हासिल कर लेने की होड़ मची है। विकास की इस दौड़ में जाने–अनजाने हमने अनेक विसंगतियों को जन्म दिया है। प्रदूषण उनमें से एक अहम समस्या है। हमारे भूमंडल में हवा और पानी बुरी तरह प्रदूषित हुए हैं। यहाँ तक कि मिट्टी भी आज प्रदूषण से अछूती नहीं रही। इस प्रदूषण की चपेट से शायद कोई चीज बची हो। साँस लेने के लिए स्वच्छ हवा मिलनी मुश्किल हो रही है। पीने के लिए साफ पानी कम लोगों को ही नसीब हो रहा है। पर्यावरणविदों का कहना है कि अगले पच्चीस सालों में दुनिया को पेयजल के घनघोर संकट का सामना करना पड़ सकता है। आज शायद ही कोई जलस्रोत प्रदूषण से अप्रभावित बचा हो। कुछ लोगों का कहना है कि अगला विश्वयुद्ध राजनैतिक, सामरिक या आर्थिक हितों के चलते नहीं, वरन् पानी के लिए होगा। यह तस्वीर निःसंदेह भयावह है। लेकिन इसे किसी भी तरह से अतिरंजित नहीं कहा जाना चाहिए। परिस्थितियाँ जिस तरह से बदल रही हैं और धरती पर संसाधनों के दोहन के चलते जिस तरह से जबर्दस्त दबाव पड़ रहा है तथा समूचा पारिस्थितिकी तंत्र जिस तरह से चरमरा गया है, उसके चलते कुछ भी संभव है।

फिलहाल यहाँ हम पर्यावरणीय प्रदूषण के सिर्फ एक पहलू की चर्चा कर रहे हैं और वह है ओजोन विघटन का संकट। पिछले कई वर्षों से पूरी दुनिया में इसकी चर्चा हो रही है तथा इसे लेकर खासी चिंता व्यक्त की जा रही है। आखिर यहाँ सवाल समूची मानव सभ्यता के अस्तित्व का है। प्रश्न उठता है कि यह ओजोन है क्या ? यह कहाँ स्थित है और उसकी उपयोगिता क्या है ? इसका विघटन क्यों और कैसे हो रहा है ? ओजोन विघटन के खतरे क्या–क्या हैं ? और यदि ये खतरे एक हकीकत हैं तो इस दिशा में हम कितने गंभीर हैं और इससे निबटने के लिए क्या कुछ एहतियाती कदम उठा रहे हैं ?

ओजोन एक गैस है जो आक्सीजन के तीन परमाणुओं से मिलकर बनी होती है। यह गैस नीले रंग की होती है और प्रकृति में तीक्ष्ण और विषैली होती है। यह मानव स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होती है और श्वास नली में चली जाने पर जलन पैदा करती है। लेकिन वायुमण्डल में मौजूद यही गैस हमारी रक्षा भी करती है। या यूँ कहें कि यह ओजोन गैस है जिसकी वजह से धरती पर जीवन फल–फूल सका है। धरती पर जीवन के अस्तित्व का श्रेय एक तरह से ओजोन को ही जाता है। ओजोन गैस धरती के वायुमंडल में 15 से 20 किलोमीटर की ऊँचाई तक पाई जाती है। वायुमंडल का यह क्षेत्र स्ट्रेटोस्फियर कहलाता है। ओजोन की सबसे ज्यादा सांद्रता धरती से 25 किलोमीटर की ऊँचाई पर होती है। जैसा कि हम जानते हैं कि सौर विकिरण में तमाम तरह की किरणें होती हैं। इनमें दृश्य प्रकाश, अवरक्त किरणें और पराबैंगनी किरणें होती हैं। पराबैंगनी किरणें अल्प तरंगदैर्ध्य की किरणें होती हैं। ये किरणें काफी घातक होती हैं क्योंकि इनकी ऊर्जा बहुत ज्यादा होती है।

हमारे वायुंडल में मौजूद ओजोन वाह्य अंतरिक्ष से आने वाली पराबैंगनी किरणों को अवशोषित कर लेती है और उन्हें धरती तक नहीं आने देती। यदि ये किरणें बेरोकटोक धरती की सतह तक चली आएँ तो इंसान के साथ ही जीवमंडल के तमाम दूसरे जीव–जन्तुओं को भारी नुकसान हो सकता है। इन पराबैंगनी किरणों से मनुष्यों में त्वचा के कैंसर से लेकर दूसरे अनेक तरह के रोग हो सकते हैं। जिस तरह रोजमर्रा के जीवन में सामान्य छतरी धूप और बरसात

से हमारा बचाव करती है उसी तरह वायुमंडल में स्थित ओजोन की परत हमें घातक किरणों से बचाती है। इसीलिए प्रायः इसे 'ओजोन छतरी' के नाम से भी पुकारते हैं। सभ्यता के आदिम काल से यह छतरी जीव–जन्तुओं और पेड़–पौधों की रक्षा करती रही है और इसके तले सभ्यता फलती–फूलती रही है। विकास की अंधी दौड़ में हमने संसाधनों का अंधाधुंध इस्तेमाल किया है। इस दौरान हमें इस बात का ध्यान प्रायः कम ही रहा कि इसका नतीजा क्या हो सकता है। और आज परिणाम हम सबके सामने है। हमारे कारनामों से प्राकृतिक संतुलन चरमरा गया है। भूमंडल पर शायद ही ऐसी कोई चीज शेष हो जो हमारे क्रियाकलापों से प्रभावित न हुई हो। स्पष्ट है ओजोन भी इसका अपवाद नहीं है।

आइए अब देखें कि ओजोन का विघटन क्यों और कैसे हो रहा है ? जैसा कि हम जानते हैं कि दैनिक जीवन में कीटनाशक, प्रसाधन सामग्री, दवाएँ, रंग–रोगन से लेकर फ्रिज और एयरकंडिशनिंग वगैरह में प्रशीतन का अहम स्थान है। सन् 1930 से पहले प्रशीतन के लिए अमोनिया और सल्फर डाइआक्साइड गैसों का इस्तेमाल होता था। लेकिन उनके इस्तेमाल में अनेक व्यावहारिक कठिनाइयाँ थीं। उदाहरणार्थ ये गैसें तीक्ष्ण थीं और मानव स्वास्थ्य के लिए हानिकारक थीं। अतः वैज्ञानिकों को एक अरसे से इनके उचित विकल्प की तलाश थी जो इन कमियों से मुक्त हो। इस क्रम में तीस के दशक में थामस मिडले द्वारा क्लोरोफ्लोरोकार्बन (सी.एफ.सी.) नामक यौगिकों की खोज प्रशीतन के क्षेत्र में एक क्रांतिकारी उपलब्धि रही। अध्ययन से पाया गया कि ये रसायन सर्वोत्तम प्रशीतक हो सकते हैं क्योंकि ये रंगहीन, गंधहीन, अक्रियाशील होने के साथ–साथ अज्वलनशील भी थे। इस तरह ये आदर्श प्रशीतक सिद्ध हुए। इसके बाद तो प्रशीतन में सी.एफ.सी. का इस्तेमाल चल निकला। प्रशीतन उद्योग में अमोनिया और सल्फर डाइ आक्साइड की जगह सी.एफ.सी. ने ले ली। इससे प्रशीतन प्रौद्योगिकी में एक क्रांति सी आ गई। लोगों को एक आदर्श विकल्प मिल गया जिसकी उन्हें एक अरसे से तलाश थी। तदनंतर बड़े पैमाने पर सी.एफ.सी. यौगिकों का उत्पादन होने लगा और घरेलू कीटनाशक, प्रसाधन सामग्री, दवाएँ, रंग–रोगन से लेकर फ्रिज और एयरकंडिशनर में इनका खूब इस्तेमाल होने लगा।

सी.एफ.सी. यौगिकों का एक खास गुण है कि ये नष्ट नहीं होते। इनका न तो आक्सीकरण होता है और न ही अपघटन। ये पानी में भी नहीं घुलते। यहाँ स्वाभाविक रूप से सवाल उठता है कि इस्तेमाल में आने वाले इन यौगिकों का आखिर होता क्या है ? सबसे पहले एक अमेरिकी वैज्ञानिक एफ.एस. रोलैंड का ध्यान इस प्रश्न की ओर गया था। उन्होंने इस दिशा में लगातार कई वर्षों तक अनुसंधान किया। उनका शोधपत्र जब 1974 में नेचर नामक प्रतिष्ठित पत्रिका में प्रकाशित हुआ तो जैसे पूरी दुनिया में एक हलचल सी मच गई। अपने पत्र में रोलैंड ने निष्कर्ष दिया था कि ये यौगिक धरती की ओजोन परत को नष्ट कर चुके हैं। शुरू में लोगों ने रोलैंड की बातों को कोई खास अहमियत नहीं दी। कुछ लोगों ने उन्हें आतंकित पर्यावरणवादी कह कर उनका उपहास किया। लेकिन कुछ ही साल बाद 1985 में ब्रिटिश सर्वे टीम के कार्यों से रोलैंड की बात सही साबित हो गई। टीम ने न केवल ओजोन विघटन की पुष्टि की बल्कि अध्ययन करके बताया कि दक्षिणी ध्रुव क्षेत्र में ओजोन की परत काफी छीज चुकी है और उसकी वजह से वहाँ एक बड़ा छिद्र हो गया है। अमेरिकी उपग्रह निम्बस द्वारा भेजे गए चित्र से भी रोलैंड की बात की पुष्टि हुई। ब्रिटिश टीम ने चेताया भी कि यदि बहुज जल्दी ओजोन विघटन को न रोका गया तो ओजोन परत के छीजने से आने वाली पराबैंगनी किरणों से धरती के तापमान में वृद्धि होगी तथा अनेकानेक तरह की त्वचा संबंधी व्याधियाँ फैलेंगी। त्वचा के कैंसर की संख्या लाखों में होगी।

सी.एफ.सी. रसायन चूँकि हवा से हल्के होते हैं अतः इस्तेमाल में आने के बाद मुक्त होकर ये सीधे वातावरण में ऊँचाई पर चले जाते हैं। वायुमंडल में ऊपर पहुँचने पर ये यौगिक पराबैंगनी किरणों के संपर्क में आते हैं जहाँ इनका प्रकाश अपघटन (फोटोलिसिस) होता है। फोटोलिसिस से क्लोरीन मुक्त मूलक पैदा होते हैं। क्लोरीन के ये मुक्त मूलक ओजोन से अभिक्रिया करके उसे आक्सीजन में बदल देते हैं। इस तरह ओजोन का ह्रास होने से ओजोन की परत धीरे–धीरे छीजती जा रही है। वस्तुतः आज ओजोन छतरी का अस्तित्व ही संकट में पड़ गया है। जिस सी.एफ.सी. को हम निष्क्रिय समझते थे वह इतनी सक्रिय है कि उससे निकला एक क्लोरीन मुक्त मूलक ओजोन गैस के एक

लाख अणुओं को तोड़कर आक्सीजन में बदल देता है। ऐसा शृंखला अभिक्रिया के कारण होता है। यहाँ गौरतलब है कि सन् 1974 में पूरी दुनिया में सी.एफ.सी. की खपत 9 लाख टन थी। पिछले कई वर्षों के शोध से मालूम हुआ है कि दक्षिणी ध्रुव के ऊपर मौजूद छिद्र आकार में बढ़ता जा रहा है। हाल के वर्षों में उत्तरी ध्रुव के ऊपर भी ओजोन के विघटन और ओजोन आवरण में छिद्र पाए जाने की सूचना मिली है जो बेहद चिंतनीय है।

ओजोन संकट पर विचार करने के लिए दुनिया के अनेक देशों की पहली बैठक 1985 में वियना में हुई। बाद में सितम्बर 1987 में कनाडा के शहर मांट्रियल में बैठक हुई जिसमें दुनिया के 48 देशों ने भाग लिया। इस बैठक में जिस मसौदे को अंतिम रूप दिया उसे मांट्रियल प्रोटोकाल कहते हैं। इसके तहत यह प्रावधान रखा गया कि सन् 1995 तक सभी देश सी.एफ.सी. की खपत में 50 प्रतिशत की कटौती तथा 1997 तक 85 प्रतिशत की कटौती करेंगे। मसौदे के कई बिंदुओं पर विकसित और विकासशील देशों के बीच मतभेद उभर कर सामने आए। मुद्दा था गैर सी.एफ.सी. प्रौद्योगिकी का विकास तथा उसका हस्तांतरण। विकासशील देश चाहते थे कि इस पर आने वाला खर्च धनी देश वहन करें क्योंकि ओजोन विघटन के लिए वे ही जिम्मेदार हैं। सन् 1990 के ताजा आंकड़ों के अनुसार पूरी दुनिया में सी.एफ.सी. की खपत 12 लाख टन तक पहुँच गई थी जिसकी 30 प्रतिशत हिस्सेदारी अकेले अमेरिका की थी। भारत का प्रतिशत मात्र 0.6 था। भारत की तुलना में अमेरिका की सी.एफ.सी. की खपत 50 गुना ज़्यादा थी। समस्या पर विचार करने के लिए लंदन में एक बैठक हुई जहाँ नए प्रशीतकों की खोज और पुरानी तकनीक के विस्थापन के लिए एक कोष बनाने की माँग की गई। यहाँ विकासशील देशों के दबाव के चलते विकसित देशों को कई रियायतें देनी पड़ीं। इसके अंतर्गत नई तकनीकों के हस्तांतरण में मदद के साथ सी.एफ.सी. के विकल्प की खोज में दूसरे देशों को धन मुहैया कराना मुख्य है। समझौते के तहत यह व्यवस्था है कि सन् 2010 तक विकासशील देश सी.एफ.सी. का इस्तेमाल एकदम बन्द कर देंगे। इस दौरान विकसित देश नए प्रशीतकों की खोज में विकासशील देशों की आर्थिक मदद करेंगे।

स्थिति की गंभीरता को देखते हुए दुनिया के सभी देशों ने इस बारे में विचार करके समुचित कदम उठाने शुरू कर दिए हैं। 'ग्रीनहाउस' प्रभाव के कारण आज धरती का तापमान निरन्तर बढ़ रहा है। इसमें ओजोन विघटन की भी अहम भूमिका है। पराबैंगनी किरणें जब धरती तक आती हैं तो स्थलमंडल में मौजूद वस्तुओं द्वारा अवशोषित कर ली जाती हैं। ये वस्तुएँ पराबैंगनी के अवशोषण के बाद अवरक्त विकिरण उत्सर्जित करती हैं। ये किरणें वापस वायुमंडल के बाहर नहीं जा पातीं क्योंकि हवा में मौजूद कई गैसें उन्हें अवशोषित कर लेती हैं। इस तरह से धरती का ताप बढ़ता है। ताप बढ़ने से ध्रुवों पर जमी हुई विशाल बर्फ राशि के पिघलने का अंदेशा है। कई जगहों से हिमनदों के पिघलने के समाचार भी आ रहे हैं। यदि ऐसा होता रहा तो समुद्र का जलस्तर बढ़ेगा और तमाम तटीय क्षेत्र पानी में डूब सकते हैं। तापवृद्धि से जलवायु में जबर्दस्त बदलाव आ सकता है। मानसून में परिवर्तन के साथ कहीं अतिवृष्टि तो कहीं अकाल जैसी स्थिति आ सकती है। वैसे विगत एक सदी के दौरान भूमंडल में काफी परिवर्तन पाया गया है। हाल ही में शोध के बाद पाया गया कि हिमालय में गंगोत्री स्थित गोमुख हिमनद हर साल 18 मीटर पीछे की ओर खिसकता जा रहा है। अगर यही हाल रहा तो संभव है कि इक्कीसवीं सदी के प्रथमार्द्ध तक यही हिमनद तथा साथ ही हिमालय के दूसरे हिमनद भी गल कर समाप्त हो जाएं। ऐसे में उत्तर भारत में बहने वाली नदियों का अस्तित्व मिट जाएगा और मैदानों की उपजाऊ भूमि के ऊसर में बदल जाने से कोई रोक नहीं सकेगा। अगर समय रहते स्थिति पर काबू नहीं पाया गया तो इसके गंभीर परिणामों से इनकार नहीं किया जा सकता। ओजोन विघटन के व्यापक दुष्प्रभावों के चलते इंसानी सभ्यता संकटापन्न है। अतः जरूरत है कि फौरन इससे निबटने के लिए समग्र कदम उठाए जाएँ अन्यथा कल तक तो शायद बहुत देर हो जाएगी।

होमी भाभा विज्ञान शिक्षा केन्द
(टी.आई.एफ.आर.)
वी.एन. पुरव मार्ग, मानखुर्द
मुंबई-400088

युद्ध का पर्यावरण पर प्रभाव

डॉ0 शिवगोपाल मिश्र

विश्वभर में अस्वस्थता (Mordibity) तथा मृत्यु (Mortality) के दो ही कारण हैं– 1. युद्ध तथा 2. संक्रामक रोग। इसके समर्थन में 1980 के दशक में नाभिकीय युद्धास्त्रों तथा 1990 के दशक में खाड़ी युद्ध में प्रयुक्त परम्परागत अस्त्रों के प्रयोग से पारिस्थितिकी पर जो प्रभाव पड़े हैं, उनका उल्लेख किया जाता है। किन्तु प्रायः चार प्रकार की गतिविधियों का पर्यावरण पर प्रभाव पड़ता है जिससे मनुष्यों की बड़ी जनसंख्या प्रभावित होती है। ये हैं– 1. नाभिकीय हथियारों का उत्पादन 2. स्थल पर वायु तथा समुद्र से की जाने वाली बमबारी 3. स्थल में बिछाई गई बारूदी सुरंगों का दीर्घकाल तक पड़े रहना तथा 4. टाक्सिनों एवं अपशिष्टों का सेना द्वारा उपयोग या संग्रह।

1. द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान नाभिकीय हथियारों की प्रौद्योगिकी विकसित की गई और इसने उद्योग का रूप धारण किया तो अमेरिका तथा रूस के बीच तनातनी शुरू हो गई। आज भी नाभिकीय हथियारों की प्रौद्योगिकी पर्यावरण के लिए विकट संकट बनी हुई है। नाभिकीय हथियारों को तैयार करते समय तथा उनके परीक्षण के समय जो रेडियोसक्रियता अवमुक्त होती है वह समस्त जीवधारियों के स्वास्थ्य के लिए, जिनमें मनुष्य भी सम्मिलित हैं, गम्भीर खतरा बनी हुई है। इस तरह से जितनी मात्रा में विकिरण उत्पन्न होता है, उसका निर्धारण स्वयं में एक समस्या है और फिर दीर्घकाल तक इन विकिरणों के सम्पर्क में आने वाली जनसंख्या का जानपदिक रोगों (epidemiological) का अध्ययन कठिन कार्य है। प्रायः ऐसे अध्ययन सीमित नमूनों के साथ किए जाते हैं जो स्थल पर किए गए परीक्षण क्षेत्रों के आसपास नाभिकीय हथियार उत्पादन करने वाले क्षेत्रों के निकट तथा उन क्षेत्रों तक ही सीमित रहते हैं जहाँ रेडियोसक्रियता परीक्षण किए जाते हैं।

बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में समस्त प्रमुख नाभिकीय शक्तियों द्वारा नाभिक हथियारों के परीक्षण कार्यक्रमों से विशाल मात्रा में रेडियोसक्रियता विमुक्त हुई है। 1945 से लेकर 1957 के मध्य अनुमानतः 423 नाभिकीय परीक्षण हवा में किए गए और 1957 से 1989 के मध्य 1400 भूमिगत परीक्षण हुए। अनुमान है कि इन परीक्षणों से लगभग 160–180 लाख क्यूरी स्ट्रांशियम–90, 250–290 लाख क्यूरी सीजियम–137, लगभग 4 लाख क्यूरी प्लूटोनियम– 329 (केवल वायु से किए गए परीक्षणों से) तथा 1 करोड़ क्यूरी कार्बन–14 मुक्त हुआ।

जिन जिन स्थानों पर नाभिकीय हथियारों का उत्पादन सैनिक उपयोग हेतु किया जाता है, वहाँ नित्य ही तथा कभी–कभी दुर्घटना के फलस्वरूप विकिरण का उत्सर्जन होता रहता है। इन स्थानों पर कार्यरत कर्मियों के स्वास्थ्य पर जो प्रभाव पड़ता होगा, उसका ठीक से आकलन नहीं हो पाया है।

2. हवा (ऊपर से) तथा समुद्र से शहरी इमारतों, अधिष्ठानों या महत्वपूर्ण ठिकानों पर जो बमबारी की जाती है, वह विश्व में रह रही जनसंख्या के पर्यावरण के यथेष्ठ भाग को प्रभावित करती है। द्वितीय विश्वयुद्ध में जब हवाई शक्ति का प्रयोग शुरू हुआ तो बमबारी से अनेक शहरी इलाके नष्ट हो गए और लाखों लोग मारे गए। अनुमान है कि 1945 में टोकियो की हवाई बमबारी से लगभग 2 लाख लोग मरे। 1943–45 में जर्मनी के 70 शहरो में बमबारी से 5 से 8 लाख व्यक्ति मारे गए। 1945 के हिरोशिमा तथा नागासाकी में गिराए गए परमाणु बमों से लगभग 2 लाख लोग मारे गए।

द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान शहरों पर की गई बमबारी तथा जंगलों, खेतों, परिवहन तंत्रों एवं सिंचाई

साधनों के विनाश से पर्यावरण पर विनाशकारी प्रभाव पड़े और युद्ध की समाप्ति तक कम से कम 5 करोड़ लोगों को विस्थापित होना पड़ा। इस युद्ध में यूरोप के अनेक शहरों को काफी क्षति पहुँची। जापान में 66 शहरों में भारी क्षति हुई, लगभग 40 प्रतिशत क्षेत्रफल विनष्ट हो गया और 90 लाख लोग बिना घरबार के हो गए। यही नहीं, दोनों विश्व युद्धों के बाद फसलें नष्ट होने, खाद्य की कमी तथा कुपोषण के कारण अधिकांश लोग प्रभावित हुए जिससे हजारों लोग मरे।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद भी वियतनाम युद्ध में अमेरिकी बमबारी से लगभग 2 करोड़ लोग शरणार्थी बने। खाड़ी युद्ध में मित्र शक्तियों ने ईराक के मुख्य नगरों को पंगु बना दिया। युद्ध या आन्तरिक संकट के कारण 1999 में साढ़े तीन करोड़ लोग विस्थापित या शरणार्थी के रूप में थे। इस तरह प्रभावित जनसंख्या से पर्यावरण पर दबाव बढ़ा।

3. विगत 50 वर्षों में यूरोप, अफ्रीका, एशिया तथा लैटिन अमेरिका में हो रहे युद्धों के फलस्वरूप विश्वभर में अनुमानतः 7 से 10 करोड़ स्थलीय बारूदी सुरंगें (Land Mines) सक्रिय अवस्था में हैं और लगभग 10 करोड़ बारूदी सुरंगें संग्रह में हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद से लगभग 4 करोड़ सुरंगें विभिन्न महाद्वीपों में छितरा दी गई हैं। इन सुरंगों से अधिकांशतः खेती के कार्य में लगे मजदूर, जानवर चराने वाले लोग ही हताहत होते हैं। इस तरह अनुमानतः 500 लोग प्रति सप्ताह मारे जाते हैं।

इन स्थलीय सुरंगों से चार प्रकार से पर्यावरण को क्षति पहुँचती है–

1. भय के कारण लोग प्रचुर प्राकृतिक संसाधनों तथा कृष्य भूमि तक पहुँचने से कतराते हैं।

2. इनके भय से लोगों को कम उर्वर क्षेत्रों में जाने के लिए मजबूर होना पड़ता है।

3. इस तरह के प्रव्रजन से जैव विविधता का तेजी से विलोप होता है।

4. स्थलीय सुरंगों के विस्फोटों से भूमि तथा जल तन्त्र छिन्न भिन्न हो जाते हैं।

इन बारूदी सुरंगों का इतना आतंक छाया हुआ है कि न जाने ये कब विस्फोट कर जाएँ, इसलिए युद्ध क्षेत्रों के आसपास की लाखों हेक्टेयर भूमि बेकार पड़ी हुई है। जब ये सुरंगें फटती हैं तो मनुष्यों एवं पालतू एवं जंगली पशुओं की हानि होती है। इसके अलावा उनसे स्थल तक तितर–बितर हो जाता है, वनस्पतियाँ नष्ट होती हैं, जल प्रवाह रुकता है और पारिस्थितिकीय तन्त्र का तेजी से ह्रास होता है।

4. द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान बाँधों के विनाश से हुई बर्बादी बहुज्ञात है। युद्ध में रणनीति के रूप में वियतनाम के जंगलों के विनाश के लिए प्रयुक्त विपत्रकों (Defoliants) के प्रयोग की घटना सर्वविदित है। अमेरिका ने 1965 से 1971 के बीच दक्षिण वियतनाम की फसलों वाली 3640 किमी0 भूमि पर कुल मिलाकर साढ़े पाँच करोड़ किलोग्राम शाकनाशियों (herbicides) का प्रयोग किया। खेतों, जंगलों तथा जलस्रोतों को ध्वंस करने के लिए रसायनों का ऐसा व्यापक प्रयोग अभूतपूर्व है। किन्तु इससे पर्यावरण पर क्या प्रभाव पड़ा, इसके विषय में अभी तक कोई खोज नहीं हुई है।

उपर्युक्त युद्ध के बाद जनवरी–फरवरी 1991 में जो खाड़ी युद्ध हुआ और उसमें युद्ध तथा उद्योग की जिन प्रौद्योगिकियों का उपयोग व्यापक पर्यावरणीय उथल पुथल मचाने के लिए किया गया, वह भी उल्लेखनीय है। ईराक ने खाड़ी के समुद्री जल में कुवैत का एक करोड़ बैरेल तेल बहा दिया जिससे पहले से ही बिगड़े सामुद्रिक तन्त्र को बड़ी क्षति पहुँची। इसी तरह ईराक ने कुवैत के 723 तेल कुओं में जो आग लगाई, उसके फलस्वरूप जो बुरे प्रभाव पड़े, वे अभी भी खोजे जा रहे हैं।

युद्धों के फलस्वरूप जिस बड़ी तादाद में शरणार्थी तथा विस्थापित सीमा क्षेत्रों में अपने डेरे डालते हैं उससे चाहे अफ्रीकी देश की सीमा हो या अफगानिस्तान–पाकिस्तान की सीमा हो या भारत–बंगलादेश की सीमा हो, सबों में जिस तरह जंगलों का विनाश होता है, राष्ट्रीय पार्कों में घुसपैठ होती है और जिस तरह जलप्रदूषण फैलता है और गंदगी फैलती है, वायु प्रदूषण होता है और जो जो जीवजातियाँ लुप्तप्राय हो रही हैं उन पर संकट के बादल मंडराने लगते हैं।

प्रधानमंत्री
विज्ञान परिषद् प्रयाग

पर्यावरण और वन्य-प्राणी संकट

डॉ0 जे.एस. यादव

पर्यावरण से अभिप्राय है उस सबकुछ से जो न केवल हमारे इर्द-गिर्द विद्यमान है अपितु हमारे बाहर और भीतर भी फैला हुआ है। यह एक प्राकृतिक स्थिति है जिसका सामान्य तौर पर हमें अहसास नहीं होता। हाँ, जब इसमें किसी प्रकार का विकार आ जाता है तो हमें लगता है कि कहीं कुछ असामान्य घटित हो गया है और तब हम उसे ढूँढने लगते हैं। अतएव हमारा पर्यावरण हमारे अस्तित्व का ऐसा हिस्सा है जिसके बिना अस्तित्व की कल्पना ही नहीं की जा सकती।

स्पष्ट है कि पर्यावरण को किसी निश्चित परिभाषा में नहीं बाँधा जा सकता। प्रकृति पौधों और प्राणियों के बीच बहुत जटिल लेकिन संतुलित संबंध बनाए रखती है। जल चक्र, कार्बन चक्र, नाइट्रोजन चक्र, खनिज चक्र आदि जैव-भू रासायनिक चक्रों से जीवित प्राणियों और भौतिक वातावरण के बीच आवश्यक लेन देन का चक्र निरन्तर चलता रहा है। इस तरह पृथ्वी पर समस्त जीवन आपस में जुड़ हुआ है।

पर्यावरण के मुख्यतः दो प्रकार के घटक होते हैं– जैव घटक और अजैव घटक। भूमि, जल, वातावरण, ऊर्जा आदि अजैव घटक हैं तो पेड़ पौधे तथा अन्य प्राणी जैव घटकों के उदाहरण हैं। वन्य-प्राणी पर्यावरण के मुख्य जैव घटक हैं।

पृथ्वी पर जीवन का आरम्भ 600 करोड़ वर्ष पहले हुआ माना जाता है। आज पृथ्वी पर पाँच लाख से अधिक प्रकार के पौधे तथा दस लाख विभिन्न प्रकार के प्राणी निवास करते हैं। यह सम्पूर्ण जीवन पृथ्वी की एक पतली परत तक सीमित है जिसे जीवमण्डल कहते हैं। जैविक विविधता के विशेषज्ञों ने पृथ्वी और स्वच्छ जल क्षेत्रों को आठ जीवन भौगोलिक खण्डों में बाँटा है। एक खण्ड महादेश या उपमहादेश जितना बड़ा ऐसा क्षेत्र हो सकता है, जिसके भूगोल, पेड़ पौधों, जीव जन्तुओं आदि के गुणों में समानता हो। हमारे देश का अधिकांश भाग हिन्द मलय खण्ड में, और बाकी हिस्सा पैलिआर्कटिक खण्ड में आता है। इन खण्डों को फिर से 193 जीवन भौगोलिक प्रान्तों में बाँटा गया है। इन प्रान्तों की सीमाएँ फिर भूगोल, पेड़ पौधों और प्राणियों की समानता पर तय की जाती हैं। भारत में इस तरह के 12 प्रान्त हैं। जिस तरह भौगोलिक क्षेत्र को खण्डों और प्रान्तों में बाँटा जाता है, उसी प्रकार दुनिया के पेड़ पौधों और जीव जन्तुओं के विरासती समूह को 14 मुख्य खण्डों में बाँटा गया है जिन्हें बायोम अर्थात् प्राकृतिक आवासों की संज्ञा दी गई है। भारत में ऐसे चार बायोम हैं– मिश्र पर्वतीय क्षेत्र, उष्ण कटिबन्धीय उमस भरे वन क्षेत्र, उष्ण कटिबन्धीय शुष्क वन और रेगिस्तान व अर्ध रेगिस्तान।

प्राकृतिक आवास जीवों के समुदायों से बनता है जो किसी विशेष जीवन क्षेत्र में एक दूसरे पर प्रभाव डालते हैं। उदाहरण के तौर पर उष्णकटिबन्धीय वर्षा वन विविध प्रकार के ऐसे पौधों तथा प्राणियों का बायोम है, जो वर्षा को जन्म देने वाली परिस्थितियों में रहने के आदी हैं। पेड़ों की ऊँची शाखाओं में बन्दर, उड़न गिलहरियाँ तथा पक्षी रहते हैं। घने वन के धरातल पर बाघ, हिरण, सांप, कीट, गोजर आदि निवास करते हैं। वर्षा वन की विशेषता काफी अधिक वर्षा और उष्ण तथा नम जलवायु है। इसी प्रकार समुद्र, झील, घास के मैदान, नम भूमि, शंकुधारी वृक्षों के वन, पतझड़ी वन, रेगिस्तान और तटवर्ती क्षेत्र विभिन्न प्रकार के प्राकृतिक आवासों के उदाहरण हैं जिनमें इन आवासों में जीवित रहने योग्य पौधे और प्राणी पाए जाते हैं।

इस प्रकार प्रकृति हमारे ग्रह पर विभिन्न जलवायु वाले और भौगोलिक क्षेत्रों में संतुलित ढंग से रहने के अभ्यस्त जीवित प्राणियों का अत्यंत जटिल

तथा विषम जाल प्रस्तुत करती है। यह हमारी प्राकृतिक विरासत है। एक ऐसी विरासत जिसमें हम स्वयं प्राणियों की कई जातियों में से एक हैं जो अपने निर्वाह तथा जीवित रहने के लिए सम्पूर्ण प्रणाली पर निर्भर करती है।

आइए जरा भारत की विपुल वन्य प्राणी सम्पदा पर निगाह डालें। वस्तुतः भारत में वन्य–प्राणियों की विपुलता तथा विविधता की कोई कमी नहीं है। हमारा देश वन्य प्राणी सम्पदा की दृष्टि से अभी भी धनी देश है। यहाँ प्राणियों की लगभग 75,000 जातियाँ पाई जाती हैं जिनमें 340 स्तनधारी, 1200 पक्षी, 420 सरीसृप, 140 उभयचर, 2000 मछलियाँ, 50,.000 कीट, 4000 मोलस्क तथा अन्य अकशेरुकी प्राणी हैं।

भारत में अनेक प्रकार के देशज (एन्डेमिक) प्राणी पाए जाते हैं जो किसी अन्य देश की धरती पर नहीं मिलते। अण्डमान जंगली शूकर, निकोबार जंगली शूकर, निकोबार कबूतर, नार्कोण्डम हार्नबिल आदि अण्डमान–निकोबार द्वीपसमूह के देशज प्राणी हैं। थामिन नामक हिरण मणिपुर प्रान्त में लोकटक झील के पास स्थित किबूल लाम जो अभयारण्य तक सीमित है। इसी प्रकार बारहसिंगा की आर्द्र क्षेत्रों में पाई जाने वाली प्रजाति उत्तर प्रदेश के तराई क्षेत्र, असम तथा सुन्दरवन में एवं शुष्क क्षेत्र में रहने वाली प्रजाति मध्य प्रदेश तक सीमित हैं।

हाथी भारत में प्राचीन समय से पौराणिक तथा शाही समारोहों की शान रहा है। गौर, भैंस, नीलगाय, चौसिंग, काला हिरण, गोरखुर और एक सींग वाला गैंडा अन्य महत्वपूर्ण वन्य स्तनधारी हैं। शिकारी प्राणियों में एशियाई शेर संसार में अफ्रीका महाद्वीप के बाहर पाया जाने वाला एकमात्र शेर है। शक्ति का प्रतीक बाघ तो भारत का राष्ट्रीय प्राणी है। संसार में पाई जाने वाली बाघ की आठ प्रजातियों में से एक शाही बंगाल बाघ है। बिल्ली परिवार के भारत में पाए जाने वाले अन्य प्राणी हैं– तेंदुआ, बदली, साह तथा जंगली बिल्ली। भालू, भेड़िया, सियार और लकड़बग्घा भी भारत के वनों में पाए जाते हैं।

यहाँ बंदरों और लंगूरों की कई जातियाँ मिलती हैं। भारत का एकमात्र कपि हुलक गिबन पूर्वी क्षेत्र वनों में पाया जाता है। सिंह के समान पूँछ वाला मकाक बंदर दक्षिणी भारत में पाया जाता है। उसके चेहरे के चारों ओंर बालों का घेरा बना होता है।

भारत में अनेक प्रकार के रंग बिरंगे पक्षी पाए जाते हैं। भारत का राष्ट्रीय पक्षी मोर सबसे सुंदर पक्षियों में से एक है। नीली ग्रीवा, पंखे जैसी कलगी तथा लंबी शानदार पूँछ वाला नर जब मादा के सम्मुख अपनी पूंछ फैलाकर प्रणय नृत्य करता है तो समां बाँध देता है। हरियाणा का राज्य पक्षी काला तीतर भी कम सुंदर नहीं होता। नीलकंठ, सूर्यपक्षी, कडफोड़वा, पीलक, हुदहुद, मच्छरंग, हरियल आदि अन्य सुंदर पक्षी हैं। सारस, चम्मचबाजा, कुंज, हंस प्रमुख जल पक्षी हैं तो शिकरा, बाज, शाहीं आदि शिकारी पक्षी हैं। चील और गिद्ध प्रकृति द्वारा नियुक्त सफाई कर्मचारी हैं। जंगली मुर्ग व अन्य फैजेण्टों की अपनी छटा है।

स्तनधारियों तथा पक्षियों की मोहक तथा सुंदर जातियों के अतिरिक्त भारत में कई प्रकार के सरीसृप, उभयचर तथा मछलियाँ भी मिलती हैं। जीवित कछुओं में सबसे विशालकाय चमड़े की पीठ वाले कछुए, हरे समुद्री कछुए, चिकने कछुए तथा ताजा पानी के कछुए भी भारत के जलाशयों में मिलते हैं। घड़ियाल और मगरमच्छ भी जल में रहने वाले प्राणी हैं। यहाँ अनेक प्रकार की छिपकलियाँ भी पाई जाती हैं जिनमें गोह और सांडा प्रमुख हैं। नागराज से लेकर विषहीन धामन तक साँपों की अनेक जातियाँ भारत में लभ्य हैं। उभयचर प्राणियों में मेंढक तथा सैलामेण्डर की सैकड़ों जातियाँ मिलती हैं। जोहड़ तालाबों, झीलों, नदियों और समुद्र में मछलियों की विविध व अद्‌भुत जातियाँ सुलभ हैं।

वस्तुतः 32.9 करोड़ हेक्टेयर भूमि, 7516 किमी समुद्री तट, सागर, झीलों, नदियों, विशाल हिमालय तथा अन्य पर्वत शृंखलाओं, राजस्थान की मरुभूमि, दक्षिण का पठार, दलदल तथा अंडमान–निकोबार व लक्ष द्वीप समूहों सहित भारत में न केवल भौगोलिक विविधता विद्यमान है, अपितु यहाँ वनस्पतियों और प्राणियों की भी विविधता और प्रचुरता है।

वन्य जीवों का स्वस्थ और सकुशल रहना कई बातों पर निर्भर करता है। उचित जलवायु, भोजन, जल और आश्रय जीवित प्राणियों की मूल आवश्यकताएँ हैं। प्रत्येक पारिस्थितिक तंत्र इसका जीता जागता उदाहरण है। प्रकृति में पारिस्थितिक तंत्र करोड़ों वर्षों के दौरान

विकसित हुए हैं। प्रत्येक पारिस्थितिक तंत्र उन विविध प्रकार के जीवों का पालन पोषण करता है जो उसके वातावरण के अनुकूल होते हैं। पारिस्थितिक तंत्र के जटिल तथा स्थायी होते हुए भी ऐसे अनेक प्राणी जो प्रारंभिक भूवैज्ञानिक युगों में पृथ्वी पर विचरण करते थे, अब विलुप्त हो गए हैं। विलुप्त होना प्राणियों के विकास की एक प्राकृतिक घटना है। कुछ जातियाँ धीरे धीरे विलुप्त होती हैं क्योंकि वे प्रकृति में अधिक अनुकूल जातियों की तुलना में ठहर नहीं पातीं। कभी कभी प्राणियों का एक सम्पूर्ण समूह भी विलुप्त हो जाता है, जैसा आज से लगभग 7 करोड़ वर्ष पूर्व क्रेटेशियस काल के अंत में डायनासोरों के साथ हुआ।

आदि मानव प्रकृति से सामंजस्य करके रहा और उसने प्राणियों की जातियों का विनाश नहीं किया। परंतु विश्व में सभ्यता के विस्तार और प्रकृति के बढ़ते हुए शोषण का वन्य जीवों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। प्राणियों का अंधाधुंध शिकार, वातावरण में परिवर्तन, पारिस्थितिक आवासों का नष्ट होना, भूमि, वायु और जल का प्रदूषण, मानव जनसंख्या में तीव्र बढ़ोत्तरी आदि कारण इस युग में प्राणियों की जातियों के विलोपन के उत्तरदायी हैं। 17वीं सदी से अब तक स्तनधारियों की लगभग 120 और पक्षियों की 150 जातियाँ विलुप्त हो चुकी हैं। औद्योगिक युग के आगमन के पश्चात् मानव हस्तक्षेप के कारण प्राणियों के विलुप्त होने की गति बढ़ गई है।

मारीशस का पक्षी डोडो, उत्तरी अमेरिका का यायावर कबूतर, मेडागास्कर का हाथी पक्षी, अंतरीप बाघ और दक्षिणी अफ्रीका का कुआगा पिछली कुछ सदियों में विलुप्त हो गए प्राणी हैं। भारत में इस सदी में चीता, छोटे आकार का एक सींग वाला गैंडा, गुलाबी सिर वाली बत्तख और पहाड़ी बटेर लुप्त हो चुके हैं जबकि जर्डन्स कर्सर 85 वर्ष पश्चात् फिर देखा गया है। वर्तमान अनुमान के अनुसार भारत में स्तनधारियों की 81 जातियाँ, पक्षियों की 38 तथा उभयचरों और सरीसृपों की 18 जातियाँ संकटग्रस्त हैं।

विश्व की सबसे बड़ी निजी संरक्षण संस्था 'नेचर कंजरवैंसी' के कैरोल एश का मत है कि लोगों को जिस प्रकृति की गोद में आप वे बसे हैं उसके विषय में ज्ञान दीजिए और वे स्वयं संरक्षण कार्यक्रम के प्रचारक बन जाएंगे। सभी जानते हैं कि विगत 30 हजार वर्षों के दौरान प्राणियों का विलुप्तीकरण ऋतु परिवर्तन व सागर का स्तर बढ़ने से नहीं हुआ, अपितु मानवप्रेरित था जो सम्पूर्ण पारिस्थितिक तंत्रों के विनाश के कारण संभव हुआ। जेनेट ऐसीमोव के अनुसार आज का मानव प्रकृति को पुनर्जीवन का अवसर नहीं दे रहा पुनः प्रारम्भ की तो बात ही छोड़िए। वर्तमान में प्रतिवर्ष 5000 से 20000 जातियों का विलोप हो रहा है। आधुनिक तकनीकी का उपयोग न केवल प्राणी वध के लिए किया जा रहा है, अपितु इसने तो पर्यावरण का रूप ही बदल डाला है जिसका कुप्रभाव अम्लीय वर्षा, ओजोन सतह की क्षीणता, जल, थल और वायु के भीषण प्रदूषण के रूप में हमारे सम्मुख हैं।

यूँ तो प्रकृति का संरक्षण भारतीय संस्कृति का मूल अंग रहा है। प्राचीनतम वैदिक ऋषियों के आश्रय अभयारण्य होते थे जहाँ सभी प्राणी निर्भय विचरते थे। वन्य जीवन के विनाश का ताण्डव हुआ अंग्रेजी राज के दौरान। स्वतंत्रता के पश्चात भारत में वन्य जीवन के संरक्षण की ओर ध्यान दिया गया और 1952 में वन्य जीव बोर्ड का गठन हुआ। तदुपरांत इस दिशा में विभिन्न कदम उठाए गए।

आज भारत के विभिन्न भागों–द्वीपों से हिमालय तक फैले हुए 84 राष्ट्रीय उद्यान और 447 अभयारण्य हैं जो देश के संपूर्ण भौगोलिक क्षेत्र का 4.5 प्रतिशत है। कई वर्षों की सुरक्षा एवं वैज्ञानिक प्रबंधन द्वारा विलुप्त होने के कगार पर पहुँची कई जातियों को बचा लिया गया है। इतना ही नहीं बल्कि उनके प्राकृतिक आवासों व पारिस्थितिक तंत्रों को भी स्वास्थ्य प्रदान किया गया है।

आदर्श पारिस्थितिक तंत्रों में जो जैविक विविधता मिलती है उसके संरक्षण के लिए जीवमण्डल स्थलों (बायोस्फियर रिजर्व) की स्थापना की परिकल्पना यूनेस्कों की 'मनुष्य और जीवमण्डल योजना' के अंतर्गत साकार हुई। भारत के जीवमण्डल आश्रय स्थलों की स्थापना के लिए 14 आदर्श पारिस्थितिक तंत्रों का न केवल चुनाव किया जा चुका है, अपितु 9 की स्थापना भी हो चुकी है।

देश में विभिन्न संकटग्रस्त प्राणियों के संरक्षण

शेष पृष्ठ 14 पर

प्रकाश प्रदूषण से धुँधलाते रात्रि आकाश के नजारे

डॉ0 प्रदीप कुमार मुखर्जी

आकाश दर्शन में रुचि रखने वाले लोगों को शहर से आसमान उतना साफ नहीं दिखाई देता है जितना कुछ वर्षों पहले दिखाई देता था। धरती से देखने पर आकाशगंगा–मंदाकिनी भी कुछ धुंधली सी नजर आती है। क्या यह ब्रह्माण्ड की बढ़ती आयु के कारण है जो मंदाकिनियों आदि से निकलने वाला प्रकाश क्षीण होता जा रहा है ? असल में इसके पीछे वजह कुछ और ही है।

सड़क किनारों की बत्तियों और कार्यालयों, घरों, हवाईअड्डों, व्यावसायिक क्षेत्रों एवं अन्यान्य स्थानों पर लगे कृत्रिम प्रकाश स्रोतों से उत्सर्जित होने वाला प्रकाश हवा में मौजूद जल वाष्प के अणुओं तथा धूल कणों से परावर्तित होकर धरती की ओर लौटता है। इससे आसमान और धरती के बीच की रोशनी की एक चादर सी बिछ जाती है। यह अवांछित प्रकाश है जो एक नए किस्म के प्रदूषण को जन्म देता है जिसे प्रकाश प्रदूषण के नाम से जाना जाता है।

प्रकाश प्रदूषण के कारण कोरी आँखों से आसमान में दिखाई पड़ने वाले कुछ तारामंडलों तथा शुक्र, शनि आदि ग्रहों को देख पाना अब दिन–ब–दिन मुश्किल होता जा रहा है।

शहरी बच्चे प्रकाश प्रदूषण के कारण सबसे अधिक प्रभावित हुए लगते हैं। आलम यह है कि ये बच्चे आकाशगंगा, सप्तर्षि मंडल तथा ध्रुव तारे तक को नहीं पहचान पाते।

गाँवों में आज भी बच्चे खुले आकाश तले लेटकर अपने बड़े–बूढ़ों से आसमान में नजर आने वाले तारों आदि के बारे में किस्से–कहानियाँ सुनते तथा जानकारी हासिल करते हैं। इससे ज्ञान वृद्धि के साथ–साथ उनकी कल्पनाशीलता को भी हवा मिलती है। सचमुच भावी कवियों, दार्शनिकों तथा वैज्ञानिकों के लिए तारों भरा आकाश एक प्रेरणा एवं कल्पना का स्रोत साबित हो सकता है। लेकिन शहरी बच्चे इससे बुरी तरह वंचित होते जा रहे हैं।

वैसे भी तारों भरे आसमान को निहारना एवं नक्षत्र लोक की रोमांचक कल्पना में खो जाना न केवल वैज्ञानिक एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टि से बल्कि सांस्कृतिक दृष्टि से भी अहम माना जाता रहा है। तभी तो प्रागैतिहासिक काल में भी तारों की दुनिया तथा समूचे ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति को लेकर उत्सुकता का भाव लोगों में देखने को मिलता था। अतः खगोल विज्ञान में रुचि संगीत, नृत्य या कविता में रुचि की तरह ही मानव संस्कृति के साथ हमेशा से ही रची–बसी रही है।

आकाश की मनभावन झाँकी एवं आकर्षक नजारों से प्रेरित होकर ही लोग कृत्रिम रूप से बने तारामंडलों (प्लेनेटेरियम) की तरफ रुख करते हैं। लेकिन रात्रि के तारों भरे असली आकाश का ये तारामंडल क्या सचमुच मुकाबला कर पाते हैं ?

इस बारे में मार्शल स्पेस फ्लाइट सेंटर के साथ संबद्ध खगोलविद मिट्जी एडम्स का कहना है, "बढ़िया से बढ़िया (मानव निर्मित) तारामंडल भी रात के आकाश की वास्तविक झाँकी दिखा पाने मे पूर्णतया असमर्थ हैं। मुझे याद हैं वे दिन जब मैं अटलांटा स्थित फर्नबैंक विज्ञान केंद्र के तारामंडल के साथ जुड़ा था। उस तारांमडल के कृत्रिम आकाश के दिन में कई बार मुझे दर्शन करने होते थे। अब हुआ यूँ कि एक हफ्ते तक अटलांटा का मौसम खराब रहने के कारण मैं कुदरती आकाश को देखने से वंचित रह गया।

आखिर एक हफ्ते बाद जब बादल छंटे तो सायंकाल समय मैं जरा टहलने के लिए तारामंडल से बाहर निकल पड़ा। मृग (ओरियन) तारामंडल पर नजर पड़ी तो उसकी भव्यता और सुंदरता देख कर मैं दंग रह गया। कृत्रिम तारामंडल में दिखाए जाने वाले ओरियन और इस ओरियन में जमीन–आसमान का अंतर था।"

एडम्स मृग तारामंडल का आकाश से दर्शन कर पाए क्योंकि यह एक चमकदार तारामंडल है। लेकिन खराब डिजाइन वाले कृत्रिम प्रकाश स्रोतों की संख्या अगर इसी तरह बेरोकटोक बढ़ती रही तो आने वाले समय में ओरियन जैसे चमकदार तारामंडल के भी कोरी आँखों से दर्शन दुर्लभ हो जाएंगे।

प्रकाश प्रदूषण के भूमंडलीय स्तर पर प्रभावों के आकलन के लिए अमेरिका के 'नेशनल ओशनिक एंड एटमास्फियरिक एडमिनिस्ट्रेशन' से संबद्ध वैज्ञानिक क्रिस एलविज ने इटली के पादुआ विश्वविद्यालय से जुड़े पियरेंटोनियो किनजेनों तथा फेबिओ फाल्शी नामक वैज्ञानिकों के साथ मिलकर एक विशद अध्ययन किया। कृत्रिम प्रकाश स्रोतों से उत्सर्जित प्रकाश का कितना हिस्सा वायुमंडल में मौजूद धूल कणों तथा जल वाष्प के अणुओं द्वारा धरती की ओर लौटता है, इसका प्राक्कलन उल्लिखित तीनों वैज्ञानिकों ने किया। इस परावर्तित प्रकाश से आकाश और धरती के बीच रोशनी के जिस चादर की सृष्टि होती है उससे भूमंडल की समग्र जनसंख्या का कितना प्रतिशत प्रभावित होता है, इसका फिर इन वैज्ञानिकों ने मोटा अनुमान लगाया। इस अध्ययन का यह नतीजा सामने आया कि विश्व का कोई भी देश कृत्रिम प्रकाश द्वारा उत्पन्न प्रदूषण के प्रभाव से अछूता नहीं है तथा भूमंडलीय जनसंख्या का करीब दो–तिहाई हिस्सा प्रकाश प्रदूषण की चपेट में है।

इस अध्ययन दल का नेतृत्व कर रहे एलविज का कहना है, "एक बड़ी प्रतिशतता ऐसे लोगों की है जो एक स्वच्छ, निरभ्र आकाश में उन मनभावन और मनोरम नजारों को देख पाने से वंचित हो जाते हैं जो कि उनके पूर्वज कभी सरलता से देख पाते थे।"

संयुक्त राज्य अमेरिका, यूरोप तथा जापान में कृत्रिम प्रकाश से उत्पन्न प्रदूषण की बहुत पहले ही पहचान कर ली गई थी। वहाँ प्रकाश प्रदूषण से संबंधित कुछ कानून भी बने हैं। लेकिन हमारे देश के लिए प्रकाश प्रदूषण की अवधारणा अभी नई ही है। हालाँकि हमारे देश में भी प्रकाश प्रदूषण से उत्पन्न समस्या को महसूस किया जा रहा है। खासकर शहरों में जहाँ चकाचौंध करने वाली रोशनी के कारण सुदूर टिमटिमाते अधिकतर तारे नजरों से छिप जाते हैं।

प्रकाश प्रदूषण के मामले में भारत के सभी प्रमुख शहरों की कमोबेश एक ही स्थिति है। यही कारण है कि रात के आकाश को शहरों से देखने पर मुश्किल से छह–सात दर्जन तारे ही नजर आते हैं जबकि शहरों से दूर के खुले या ग्रामीण अंचलों में आसमान में 2000 के करीब तारे दिखाई पड़ते हैं।

प्रकाश प्रदूषण की समस्या से निपटने के लिए लोगों में जागरूकता पैदा किया जाना बहुत जरूरी है। अमेरिका में सन् 1988 में आकाश दर्शन में रुचि रखने वाले एक दल के द्वारा इस दिशा में पहल करते हुए 'इंटरनेशनल डार्क स्काई एसोसिएशन' की स्थापना की गई। इस एसोसिएशन का उद्देश्य लोगों में सही डिजाइन वाले प्रकाश स्रोतों के बारे में जानकारी देना था ताकि विद्युत ऊर्जा की बर्बादी पर अंकुश लगने के साथ साथ प्रकाश प्रदूषण की समस्या से भी निपटा जा सके।

मुख्यतः जीवाश्म ईंधनों के दहन से ही विद्युत ऊर्जा उत्पन्न होती है। इस प्रक्रिया में काफी मात्रा में 'ग्रीन हाउस गैसों' की भी सृष्टि होती है जो 'ग्लोबल वार्मिंग' का कारण बनती है। फलतः धरती के तापमान में वृद्धि होती है।

तकनीकी उन्नति के चलते विद्युत इंजीनियरों को अधिक दक्षता तथा समुन्नत डिजाइन वाले कृत्रिम प्रकाश स्रोतों को विकसित करने में सफलता मिली है। ऐसे ऊर्जा दक्ष स्रोतों से न केवल बिजली की बचत होती है बल्कि प्रकाश प्रदूषण की समस्या पर काफी हद तक काबू पाया जा सकता है। हमारे देश में भी प्रकाश प्रदूषण के प्रति जागरूकता पैदा कर ऐसे ऊर्जा–दक्ष प्रकाश स्रोतों के इस्तेमाल को बढ़ावा मिलना चाहिए।

43, देशबंधु सोसाइटी
15, पटपड़गंज, दिल्ली–110092

धूप : झारखण्ड के आदिवासियों के लिए एक औषधि

डॉ० चन्द्रकान्त वर्मा

छोटानागपुर के पठारी क्षेत्रों में अनेक प्रकार के आदिवासी कबीले निवास करते हैं, ये आदिवासी झारखण्ड राज्य के प्रायः सभी जिलों में निवास करते हैं। यह क्षेत्र मुख्यतः पहाड़ी तथा जंगली पठार है इसका कुछ भाग समतल भूमि और चिकनी मिट्टी की भी है तथा आबादी भी घनी है। इन क्षेत्रों में मुख्यतः ग्रामीण लोग रहते हैं तथा वैदिक काल से ही यह भारतीय सभ्यता का केन्द्र रहा है। झारखण्ड का जनजातीय क्षेत्र भूगर्भशास्त्र की दृष्टिकोण से राजमहल, साहेबगंज, दुमका, गोड्डा, देवधर, सिमगेड़ा, लोहरदगा, चाईवासा, पलामू, सिंहभूमि आदि क्षेत्रों में निवास करते हैं। झारखण्ड राज्य में लगभग 30 प्रकार की जनजातियाँ रहती हैं। इनमें संथाल, असुर, विरहोर, कोरवा आदि प्रमुख जनजातियाँ हें। ये जनजातियाँ केवल गैर–आदिवासियों से ही भिन्न नहीं बल्कि एक दूसरे से भी भिन्न हैं। ये लोग एक दूसरे से नस्ल, सामाजिक संगठन, भाषा, अर्थव्यवस्था तथा संस्कृति में भी भिन्न है। कुछ ऐसी भी जनजातियाँ हैं जिनका न तो कोई स्थायी निवास स्थान है और न कोई स्थायी आय का साधन ही।

ये लोग भोजन की खोज में एक स्थान से दूसरे स्थान पर भटकते फिरते हैं और इस प्रकार इनके गृह द्वार में भी परिवर्तन होते रहता है। इनमें से कुछ जनजातियाँ कृषि एवं शिकार पर अपना जीवन निर्वाह करती हैं। कृषि में धान, गेहूँ, बाजरा, महुआ, मकई तथा कुछ तिलहनी फसल भी उगाते हैं। इसके अतिरिक्त जंगलों से विभिन्न प्रकार के जंगली जानवरों तथा पक्षियों का शिकार करते हैं। इससे भी जब समय बचता है तो विभिन्न प्रकार के कन्दमूल, फल के पत्ते, दतवन, महुआ के फूल एवं फल लाकर बाजारों में बेचते हैं। इन सब कार्यों के लिए इन्हें सुबह से शाम तक का समय लगता है। इस बीच उन्हें कड़ी धूप एवं वर्षा का भी सामना करना पड़ता है। लगातार काम करते रहने से एवं स्नान न कर पाने के कारण आदिवासियों एवं गैर मजदूरों के शरीर पर एक विशेष प्रकार की फफूँद एवं कीटाणु (जीव) शरीर के त्वचा पर उत्पन्न हो जाते हैं जो शरीर एवं उनके स्वास्थ्य को नुकसान पहुँचाते हैं जिससे उनका स्वास्थ्य बिगड़ जाने का खतरा बना रहता है।

धूप आदिवासियों एवं वैसे मजदूर जो दिन भर खेतों एवं जंगलों में कड़ी धूप में काम करते हैं या घूमते रहते हैं के स्वास्थ्य के लिए कुछ वैज्ञानिक कारणों की वजह से लाभकारी है। धूप त्वचा पर जमी एक विशेष प्रकार की फफूँद और बैक्टीरिया नामक जन्तु नष्ट करती है। आदिवासी जो दिन भर धूप में कोई न कोई काम करते हैं, उनके शरीर के त्वचा पर लगी फफूँद और बैक्टीरिया जैसे जन्तु को धूप नष्ट करती है, जो स्वास्थ्य के लिए लाभकारी है। इस तरह धूप झारखण्ड के आदिवासियों के लिए एक प्रकार की औषधि का काम करती है।

विटामिन 'डी' की कमी से ही बच्चों में विभिन्न स्तर के रिकेट्स (Rekets) की बीमारी तथा वयस्कों में ऑस्टिओमेलेसिया (Osteomalacia) नामक रोग उत्पन्न होती है। चूँकि विटामिन 'डी' शरीर में मुख्य रूप से

कैल्सियम एवं फास्फोरस के अवशोषण तथा उपयोग में सहायता करता है, इसलिए इसकी कमी कैल्सियम एवं फास्फोरस की परोक्ष रूप से शरीर में कमी उत्पन्न कर देती है। फलस्वरूप उक्त व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं। इसकी कमी दूर करने के लिए नवजात शिशुओं को कुछ समय के लिए खुले बदन धूप का सेवन कराया जाता है। इससे शिशुओं के शरीर में विटामिन 'डी' की पूर्ति होती है। इसके अतिरिक्त धूप मानव के श्वेत रक्तकणों की सक्रियता बढ़ाती है जिससे शरीर की प्रतिरक्षा क्षमता बढ़ती है।

जब धूप शरीर की त्वचा पर पड़ती है तो कुछ तत्व रक्त में प्रवेश कर उसे नई शक्ति देते हैं। इससे शरीर तरोताजा सा महसूस होता है। पेशियाँ अधिक तन जाती हैं और बेहतर काम करने के लायक शरीर में स्फूर्ति पैदा होती है। एक तरह से हमारे स्नायुतंत्र को धूप से अतिरिक्त चेतना मिलती है जिससे हम अधिक सजग हो जाते हैं और हमारी क्रियाशीलता बढ़ जाती है।

त्वचा में ऐस्टरोल नामक एक पदार्थ होता है जो सूर्य की पराबैगनी किरणों के प्रभाव से विटामिन 'डी' में बदल जाता है। विटामिन 'डी' से हड्डियाँ अधिक विकसित होती हैं जो शरीर के लिए बहुत लाभप्रद है। यही कारण है कि आदिवासी गैर आदिवासियों की अपेक्षा अधिक ताकतवर एवं स्वस्थ होते हैं।

पेड़ पौधों में हमने देखा है कि इसके पत्तों एवं तनों में कई प्रकार के कीड़े–मकोड़े तथा कीट–पतंग लग जाते हैं। ये कीड़े–मकोड़े तथा कीट–पतंग पौधों में लगकर नुकसान करते हैं और पौधों को बढ़ने में अवरुद्ध करते हैं। कभी कभी उसमे इतने कीड़े मकोड़े लग जाते हैं कि उस पर दवा का छिड़काव करना पड़ता है। यदि इन पेड़ पौधो को बराबर ठीक ढंग से धूप मिलता रहे तो पेड़ पौधों को कीड़े मकोड़ों से छुटकारा पाया जा सकता है। यह कीड़े मकोड़े तथा कीट पतंग अधिकांशतः वर्षा ऋतु में ही देखने को मिलते हैं। इस ऋतु में धूप ठीक ढंग से पेड़ पौधों को नहीं मिल पाती है। ग्रीष्म ऋतु में कीड़े मकोड़े पेड़ पौधों मे देखने को नहीं मिलते हैं, इसका कारण यह है कि ग्रीष्म ऋतु में पेड़ पौधों को पर्याप्त धूप मिलती रहती है। यही वजह है कि ग्रीष्म ऋतु में पेड़ पौधों में कीड़े मकोड़े बिल्कुल ही नहीं दिखाई पड़ते।

अतः निष्कर्ष के तौर पर हम कह सकते हैं कि धूप मनुष्यों के साथ साथ पेड़ पौधों के लिए भी अत्यंत आवश्यक है। एक ओर जहाँ धूप आदिवासियों तथा बच्चों को कई प्रकार के रोगों से बचाती है वहीं दूसरी ओर पेड़ पौधों के समुचित विकास में भी धूप काफी मदद करती है।

व्याख्याता
मानव विज्ञान विभाग
के.आर.एम.एम. वनांचल कॉलेज
गिरीडीह, झारखण्ड

पृष्ठ 10 का शेष .....

और संवर्धन के लिए विभिन्न परियोजनाएँ प्रारम्भ की गई हैं, यथा बाघ परियोजना, गीर सिंह परियोजना, हिमालय कस्तूरी मृग परियोजना, मणिपुर थामिन परियोजना, हांगुल परियोजना, मगर प्रजनन परियोजना एवं हाथी परियोजना।

इसके अतिरिक्त भारतीय वन्य प्राणी (सुरक्षा) अधिनियम, 1972 की विभिन्न धाराओं में संशोधन, पर्यावरण (सुरक्षा) अधिनियम, 1986 को अधिक प्रभावी बनाना और साइट्स जैसी अंतर्राष्ट्रीय संधियों को स्वीकार करना वन्य प्राणी संरक्षण की दिशा में एक प्रभावी कदम है।

इसके साथ साथ वन्यप्राणियों और उनके संरक्षण का ज्ञान व जागरूकता उत्पन्न करने की नितांत आवश्यकता है। पृथ्वी के पर्यावरण के संरक्षण के लिए और जीवन को संतुलित बनाए रखन के लिए वन्य प्राणी भी उतना ही महत्व रखते हैं जितना कि मनुष्य।

पूर्व अधिष्ठाता, विज्ञान संकाय
एफ–1, कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय
कुरूक्षेत्र–136119

शहरी व औद्योगिक क्षेत्रों में वायु प्रदूषण निवारण में हरित पट्टी की उपयोगिता

डॉ0 एस.बी. अग्रवाल

मानव जीवन वातावरण द्वारा ही प्रदत्त है तथा उसके जीवन की गुणवत्ता उस वातावरण पर पूर्ण रूप से निर्भर करती है जिसमें वह निवास करता है। वातावरण की अवस्था विभिन्न प्रकार से प्रभावित होती रहती है – जैसे किसी पौधे या जन्तु की किसी प्रजाति के विलुप्त होने से, वातावरण की सुन्दरता नष्ट होने से अथवा वायु, जल या मृदा के प्रदूषित होने से। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि प्रकृति की कुल उत्पादकता भौतिक संसाधनों के परिप्रेक्ष्य में वातावरण की गुणवत्ता से सीधे तौर पर जुड़ी होती है। 'मानव की प्रकृति' या 'प्रकृति का मानव' दोनों ही एक दूसरे से गहरी समानता रखते हैं। आज, वातावरण के निरन्तर क्षरित होने से यह मानव के लिए विशेष चिन्तन एवं शोध का मुख्य विषय बन गया है। दूसरे शब्दों में, मानव का प्रकृति के प्रति सोचने का तरीका बदल गया है। इन्हीं कारणों से पर्यावरणीय समस्याओं को ढूँढने तथा उनका निवारण करने के लिए विभिन्न विषयों के विशेषज्ञ जैसे अभियन्तागण, रसायनशास्त्री, जन्तु व वनस्पतिशास्त्री, भूगोलविद्, समाजविद्, मौसम विशेषज्ञ व पर्यावरणविद् साथ मिल बैठकर इसका सामयिक समाधान तलाशने का प्रयत्न कर रहे हैं। वर्तमान समय में विकास का सीधा मतलब है एक अच्छे व शुद्ध वातावरण का निर्माण करना। इसका मुख्य उद्देश्य है 'विकास बिना किसी नुकसान के'। इसीलिए विभिन्न कार्यक्रम जैसे– जल, वायु व मृदा के प्रदूषण की रोकथाम, मृदाक्षरण को रोकना, जंगली जीवन की सुरक्षा व बढ़ोत्तरी, वनों का विकास, जैव विविधता की सुरक्षा व साथ में भविष्य में होने वाले विकास कार्यक्रमों को ध्यान में रखकर अग्रिम योजनाओं को बनाने की है जिससे पर्यावरणीय गुणवत्ता को बनाए रखा जा सके। इस प्रयास में सफलता के लिए योजना व विकास की जानकारी के साथ साथ उचित पर्यावरणीय प्रबंधन की आवश्यकता है। इस लेख में मुख्यतः वायु प्रदूषण की रोकथाम के लिए हरित पट्टी के विकास व प्रबंध तथा इस परिप्रेक्ष्य में हरे पौधों व वृक्षों की उपयोगिता पर संक्षिप्त प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

पौधे–प्रकृति व मानव के रक्षक

प्रकृति एवं मानव के प्रगाढ़ सम्बन्धों में हरे पेड़ पौधों का अपना विशिष्ट स्थान है। विश्व में पर्यावरणीय योजनाओं तथा वायु गुणवत्ता के प्रबन्धन में पेड़ पौधों को विशेष महत्व दिया गया है।

हरे पेड़ पौधों का प्रकृति में क्या योगदान है– यह तब और स्पष्ट हो जाता है जब हम पौधों और जन्तुओं (मानव सहित) के बीच के ऊर्जा सम्बन्ध को ध्यान में रखें। पौधे मानव को खाना, कपड़ा, चारा, ईंधन, औषधि व खाद तक प्रदान करते हैं। आधुनिक युग में प्रदूषित हवा को शुद्ध करने में सहायक होना इन पौधों को और भी महत्वपूर्ण बना देता है। पौधों में ऐरोसॉल, धुआँ, धूल, परागकरण, रेडियोधर्मिता युक्त तत्वों व प्रदूषित गैसों (सल्फर डाइआक्साइड, नाइट्रोजन के आक्साइड, ओजोन व पैन इत्यादि) को कम करने की क्षमता सर्वविदित है। पौधों में प्रदूषित गैसों को अवशोषित् कर उनको रासायनिक क्रियाओं द्वारा कम नुकसान पहुँचाने वाले घटकों में बदलने की एक विशेष क्षमता होती है जिससे वायु गुणवत्ता सही बनी रहती है। यथा पौधे वायु से सल्फर डाइआक्साइड (जो

विभिन्न कारखानों, वाहनों व कोयला जलाने से बड़ी मात्रा में उत्पन्न होती है) अवशोषित कर आक्सीकरण की क्रिया द्वारा उसको कम जहरीले 'सल्फेट' में बदल देते हैं। यह ध्यान देने योग्य बात है कि वायु में इस गैस की सांद्रता एक निश्चित अनुपात से ज्यादा होती है तो पौधे इस क्रिया में अपने को असहाय पाते हैं और इनको नुकसान पहुँचता है।

नई धारणा के अनुसार हरे पौधे ही प्रकृति में मानव जीवन की रक्षा करने के साथ साथ वातावरण की शुद्धता व सन्तुलन बनाए रखने के प्राथमिक एवं प्राकृतिक रक्षक हैं। इन्हीं कारणों से आज हरे पौधों तथा वृक्षों को विभिन्न प्रकार के वायु प्रदूषण दूर करने की तकनीक में उपयोग किया जा रहा है।

पौधे : वायु प्रदूषण के सूचक

विभिन्न पौधों को अगर विभिन्न स्थानों पर जहाँ वायु प्रदूषण की मात्रा अलग अलग हो, रखा जाए तो कुछ पौधे जल्द ही अपने में बीमारी के लक्षण (जैसे पीले–भूरे रंग के धब्बे या पत्तियों के हरे रंग का गायब होना, आदि) प्रदर्शित करते हैं जबकि अन्य पौधों में ये लक्षण बहुत देर से प्रकट होते हैं या दिखते ही नहीं है। वायु प्रदूषण के लक्षण जल्दी दिखाने वाले पौधे वायु प्रदूषण के 'सूचक' कहे जाते हैं। इस तरह के पौधे बराबर प्रदूषित वातावरण में रहने के कारण निश्चित समय बाद वातावरण से लुप्त हो जाते हैं। ऐसे बहुत से पौधे की विभिन्न प्रजातियों की सूची मौजूद है जो प्रदूषित वातावरण के कारण या तो समाप्त हो गए हैं या अन्त होने के कगार पर हैं।

पौधों में हानिकारक लक्षणों का वायु प्रदूषण के परिपेक्ष्य में अध्ययन का विशेष महत्व है क्योंकि ये पौधे न केवल कारखानों व औद्योगिक क्षेत्रों में 'जैविक सूचक' (बायोइन्डीकेटर) का कार्य करते हैं वरन् वायु प्रदूषण के प्रसार को चिन्हित करने में भी सहायक होते हैं। साधारणतः तम्बाकू के पौधे ओजोन गैस की, सेम के पौधे पैन (परआक्सी एसीटाईल नाइट्रेट), ग्लैडियोलस व ट्यूलिप फ्लोराइड की व डहेलिया, एल्फाफा व लाइकेन इत्यादि सल्फर डाइआक्साइड गैस की उपस्थिति का पता लगाने में मुख्यतः प्रयोग किए जाते हैं। वायु प्रदूषण के प्रति लाईकेन (शैवाल व फफूँद के संयोजन से बनने वाले पौधे) की संवेदनशीलता ऐतिहासिक महत्व की है क्योंकि विश्व में प्रमुख शहरों से इस जाति में विलुप्त होने से ही यह ज्ञात हुआ कि वायु प्रदूषण पौधों के लिए भी हानिकारक है।

पौधे : वायु प्रदूषण के अवशोषक

वायू प्रदूषण नियंत्रण में इसका समुचित प्रबंधन, स्रोत के पास ही हो जाना चाहिए क्योंकि एक बार वातावरण में प्रवेश करने के बाद इसको केवल समय या स्थान के साथ या तो कम किया जा सकता है या उनको कम हानिकारक घटकों में बदला जा सकता है। वातावरण में पौधे/वृक्ष अपनी पत्तियों की सतह की मदद से इन वायु प्रदूषकों को अवशोषित कर इनको बाद में कम हानिकारक घटकों में बदलने की क्षमता रखते हैं।

वैज्ञानिक परीक्षणों से पता चलता है कि कुछ पौधों में प्रदूषित तत्वों को ग्रहण कर अपने में समायोजित करने की क्षमता अन्य पौधों से ज्यादा होती है। इन पौधों को ज्यादा प्रदूषित क्षेत्रों में रखे जाने पर भी उनमें विपरीत लक्षण कम ही दिखाई पड़ते हैं और ये अपनी सामान्य वृद्धि को बराबर बनाए रखते हैं। ये पौधे 'अवरोधक' या 'कठोर' श्रेणी के होते हैं। ये गुण उनमें विभिन्न बाहरी व आन्तरिक संरचना, कायिकी व आनुवांशिक संरचना इत्यादि के कारण होते हैं। 'अवशोषक पौधे' विभिन्न प्रजातियों का ऐसा समूह है जो शहरी व औद्योगिक क्षेत्रों में शुद्ध वायु क्षेत्र (लंगस्पेस) व हरित संरक्षित पट्टी (ग्रीन शेल्टर बेल्ट) के विकास में सहयोगी होते हैं। इन पौधे के सम्पर्क में जो विषैले घटक (खास तौर पर गैसें) आते हैं उनको ये अपने में अवशोषित कर लेते हैं जिससे वायु में इनकी सान्द्रता कम हो जाती है। वास्तव में ये पौधे वातावरण में 'जैविक छन्ने' (बायोलॉजिकल फिल्टर) का कार्य करते हैं।

अवरोधी पौधों का उचित चुनाव

अवरोधक क्षमता हमेशा सम्पूर्ण न होकर तुलनात्मक होती है। पौधों में वायु प्रदूषण के प्रति संवेदनशीलता व प्रतिरोधक क्षमता विभिन्न वाह्य कारकों (प्रकाश, तापमान, आर्द्रता व हवा गति, इत्यादि) व आन्तरिक कारकों (पत्ती सरंचना, पत्र रंध्र की संख्या व स्थान तथा आक्सीकरण क्षमता, आदि) पर निर्भर करती है। वैज्ञानिक परीक्षणों से पता चलता है कि जिन

पौधों की पत्तियों का पी0एच0, क्लोरोफिल, ऐस्कोर्बिक अम्ल व तुलनात्मक जल आर्द्रता का प्रतिशत ज्यादा होता है प्रदूषित क्षेत्रों में ज्यादा अवरोधी सिद्ध हुए हैं। इन पैमानों का उपयोग करके वैज्ञानिकों ने विभिन्न पौधों की वायु प्रदूषण के प्रति अवरोधक क्षमता (ए0पी0टी0आई0) का पता लगाया है। जिससे प्रत्येक क्षेत्र में उचित 'हरित पट्टी' का विकास किया जा सके। ध्यान रखने योग्य यह बात है कि उन्हीं पौधों का चयन ज्यादा उपयोगी होता है जिनको काटने या जला दिए जाने पर भी उनमें नीचे से पुनर्जीवित होने की क्षमता ज्यादा हो।

हरित पट्टी का विकास व संरचना

हरित पट्टी की संरचना प्रदूषण स्रोत की भौगोलिक स्थिति व उस क्षेत्र में उसके फैलाव पर निर्भर करती है। प्रदूषण के केन्द्रीय स्रोत जो विभिन्न औद्योगिक गतिविधियों जैसे तापीय विद्युत घर, सीमेन्ट, पेट्रोलियम, धातु व रसायन निर्माण से संबंधित कारखानों के प्रदूषण के कारण होता है। उसमें प्रदूषण हमेशा हवा बहने की दिशा में होता है। इस तरह के क्षेत्रों में जहाँ वायु प्रदूषण की मात्रा ज्यादा होती है, वहाँ फैलती हुई आच्छादन वाले प्रतिरोधक पौधे जैसे प्रोसोफिस, कैसिया, नेरियम व बोंगेनबेलिया आदि ज्यादा उपयोगी होते हैं। मध्य प्रदूषित क्षेत्रों के लिए सुबबूल, नीम, पाकड, कदम्ब व महुआ प्रजातियाँ ज्यादा पसंद की जाती हैं। कम प्रदूषित क्षेत्रों के लिए कम शाखा वाले लम्बे वृक्ष जैसे यूकैलिप्टस, शीशम, अशोक, जंगल जलेबी व अर्जुन प्रजातियाँ ज्यादा उपयुक्त पाई गई हैं। ये पेड़ प्रदूषित कणों व गैसों को अवशोषित करने के साथ हवा की गति को भी कम कर देते हैं। इन क्षेत्रों में सड़क दक्षिण पूर्व से उत्तर पश्चिम दिशा में होनी चाहिए। पौधों को प्वाइंट स्रोत से एक केन्द्रीभूत गोलों में उनकी ऊँचाई, आच्छादन व अवरोधक क्षमता को ध्यान में रखकर विशेषज्ञ की सलाह से लगाना चाहिए। इनमें लम्बे वृक्ष बाहर की तरफ व छोटे पौधे अन्दर के हिस्से में होने चाहिए।

शहरी क्षेत्रों में प्रदूषण की समस्या थोड़ी जटिल होती है क्योंकि इनमें औद्योगिक गतिविधियों, घरेलू कारणों व तेजी से बढ़ते गमनागमन के साधनों (मोटरकार, स्कूटर, ट्रक, बस इत्यादि) के कारण ज्यादा होता है। शहरी क्षेत्रों में आवश्यक है कि नागरिकों को शुद्ध वातावरण मिले जिससे वे स्वस्थ जीवन का लाभ उठा सकें। इन क्षेत्रों में नई सड़कों का निर्माण व विकास हमेशा हवा की बहती दिशा में होना आवश्यक है। क्योंकि इससे मोटर वाहनों से निकला प्रदूषण हवा के साथ शहरी क्षेत्र से बाहर निकल जाता है। सड़कों के अगल–बगल प्रदूषण को रोकने के लिए उचित पौधों का रोपण आवश्यक है। इन पौधों में गोलाकार आच्छादन वाले वृक्ष सड़क के अन्दर की तरफ और शंक्वाकार आच्छादन वाले वृक्ष बाहर की तरफ लाभदायक होते हैं। इन पेड़ों से वायु के साथ साथ ध्वनि प्रदूषण की भी रोकथाम होती है। इसके लिए अशोक, सुबबूल, जंगल जलेबी, शीशम, कचनार, पाकड, बरगद, पीपल, सिरिस, इमली, सावनी, नीम व अर्जुन के पौधे मुख्य रूप से उपयोगी हैं।

शहरों के मध्य एक गर्म क्षेत्र बनता है जहाँ हल्की व शुष्क वायु ऊपर जाती है और भारी प्रदूषित वायु बगल से उसका स्थान ले लेती है। इसलिए शहरों की पारिस्थितिक अनुकूल विकास योजना में शहर के मध्य एक विशाल खुला स्थान जरूर होना चाहिए जिसमें प्रदूषण–अवरोधी पौधों की विभिन्न प्रजातियों को होना चाहिए। यह स्थान 'शुद्ध वायु क्षेत्र' (लंगस्पेस) कहा जाता है जहाँ मनुष्यों को हरे पेड़ पौधों व सुन्दर फूलों के बीच न सिर्फ शुद्ध हवा मिलती है वरन् एक विशेष मानसिक शान्ति का अनुभव होता है। ये पेड़ विभिन्न तरह के प्रदूषणों को दूर करते हैं और साथ ही अपनी प्रकाश–संश्लेषण प्रक्रिया द्वारा वातावरण में भारी मात्रा में एकत्रित कार्बन डाइआक्साइड को अपने में समाहित कर वायु के शुद्धीकरण का कार्य करते हैं। इससे वातावरण के तापमान में गिरावट आती है व गर्म मौसम में शीतलता का विशेष अनुभव होता है। झगड़ा फसाद को दूर रखने के लिए इन सार्वजनिक क्षेत्रों में फल देने वाले वृक्षों को कम से कम लगाना श्रेष्ठ होगा।

पर्यावरणविदों का विश्वास है कि हरित पट्टी के शहरी व औद्योगिक क्षेत्रों में विकास से न सिर्फ आज अच्छे व शुद्ध वातावरण का निर्माण होगा वरन् आगे भी होता रहेगा।

वनस्पति विज्ञान विभाग
इलाहाबाद कृषि संस्थान (मान्य विश्वविद्यालय)
इलाहाबाद-211007

संस्कृत में पर्यावरण विज्ञान

डॉ0 विद्याधर शर्मा गुलेरी

मानव जीवन का कोई भी पहलू ऐसा नहीं है जिसकी चर्चा वेद में न की गई हो और पर्यावरण भी इसका अपवाद नहीं है। वायु, जल, पेड़–पौधे, भूमि, आकाश, सूर्य आदि ये सब पर्यावरण के घटक हैं। वेद में इन सब तत्वों का **देव** नाम से कथन किया गया है। देव का अर्थ है **दिव्य गुणं समन्वितम्**। ये सब तत्व अपने दिव्य गुणों के दान से पर्यावरण को शुद्ध व स्वस्थ रखते हैं। वेद का कथन है कि मनुष्य वेद प्रतिपादित सौ वर्ष या सौ से भी अधिक वर्ष की आयु तभी प्राप्त कर सकता है जब वह शुद्ध वायु में श्वास ले, शुद्ध स्वच्छ जल का पान करे, शुद्ध अन्न का भक्षण करे, शुद्ध मिट्टी में खेले कूदे और शुद्ध भूमि में खेती करे। परन्तु आज न केवल हमारे देश में ही अपितु समस्त भू मण्डल पर पर्यावरण प्रदूषण इतना बढ़ गया है कि मनुष्य को जल, वायु, अन्न, भूमि, मिट्टी, कुछ भी शुद्ध रूप से सुलभ नहीं है। कल–कारखानों से निकले अपद्रव्य, धुआँ, गैस, कूड़ा–कचरा, जनसंख्या विस्फोट, वन–विनाश आदि इस प्रदूषण के कारण हैं। औद्योगिक उन्नति के फलस्वरूप प्रदूषण इस स्थिति तक पहुँच गया है कि कई स्थानों पर तेजाबी वर्षा हो रही है जिसका दुष्प्रभाव तालाबों के जीव जन्तुओं तथा भूमि की वनस्पतियों पर पड़ रहा है। बड़े बड़े भवन विकृत हो रहे हैं। यदि इसी गति से यह प्रदूषण बढ़ता रहा तो वह दिन दूर नहीं जब यह भूमि मानव तथा अन्य प्राणियों के निवास योग्य नहीं रह जाएगी।

आज इस पर्यावरण प्रदूषण की विकरालता को देखकर विभिन्न राष्ट्रों द्वारा पर्यावरण सुरक्षा हेतु प्रभावशाली कदम उठाए जा रहे हैं। विभिन्न राष्ट्रों की संयुक्त बैठक बुलाई जाती है जिसमें पर्यावरण प्रदूषण का अध्ययन करने, उसे रोकने के उपायों को क्रियान्वित करने हेतु अनेक सरकारी, अर्धसरकारी, व्यक्तिगत तथा जनता की ओर से सामूहिक तथा सरकार के पर्यावरण शोध हेतु अनेक पुरस्कार दिए जा रहे हैं। रासायनिक इंजीनियरिंग के क्षेत्र में 'पर्यावरणीय इंजीनियरिंग' (Environmental Engineering) एक प्रमुख अध्ययन शाखा के रूप में उभर रही है। जनता द्वारा 'चिपको आन्दोलन' जैसे आन्दोलनों का भी सूत्रपात हुआ है।

हम यह देखने का प्रयास करेंगे कि पर्यावरण के विषय में वेद की क्या दृष्टि है।

वेद का सन्देश है कि यदि मनुष्य वायु, जल, भूमि, प्रकृति के घटकों को शुद्ध स्वच्छ रखता है तो पर्यावरण स्वयमेव हमारे लिए हितकारी व शुद्ध रहेगा। वेद हमारा मार्ग प्रशस्त करता है किस प्रकार हमें प्रकृति के उक्त तत्वों से उपयोग लेना है और कैसे इनकी रक्षा करनी है।

वायुमण्डल की स्वच्छता और उसका प्रभाव

वायु प्राण शक्ति है। इसके बिना हम जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकते। वेद का कथन है कि केवल वायु ही नहीं अपितु स्वच्छ वायु का सेवन प्राणियों के लिए हितकर है। यह बात वेद के निम्नलिखित मन्त्रों से स्पष्ट होती है –

"वात आ वातु भेषजं शुभु मयोभु नो हृदे।
प्राण आयूंषि तारिषत्।"

(ऋग्वेद 10,186)

अर्थात् वायु हमें ऐसी औषधि प्रदान करे जो हमारे हृदय के लिए शान्तिकर एवं आरोग्यकर हो, वायु हमारी आयु को बढ़ाए। दूसरे मन्त्र –

"यददो वात ते गृहे मृतस्य निधिहितः।
ततो नो देहि जीवसे।"

(ऋग्वेद 1. 186 3.)

में वैदिक ऋषि वायु के अमृत तत्व की ओर संकेत करते हुए कह रहे हैं कि हे वायु ! जो तेरे घर में अमृत की

निधि रखी हुई है, उसमें से कुछ अंश हमें भी प्रदान कर। हम दीर्घजीवी होंवे।

स्पष्ट है कि वायु के अन्दर विद्यमान अमृत की निधि आक्सीजन ही है। यह प्राण वायु ही हमें प्राण देती है तथा शारीरिक मलों को विनष्ट करती है जिससे मनुष्य दीर्घजीवी होता है। इसके विपरीत प्रदूषित वायु में श्वास लने से मनुष्य दुबला–पतला और अल्पायु होता है। शुद्ध वायु में श्वास लेने से हमें कैसे लाभ होता है इसका वर्णन वेद के निम्न मन्त्रों में किया गया है –

"द्वाविमौ वातौ वात आ सिन्धोरा परावतः।
दक्षं ते अन्य आ वातु परान्यो वातु चद् रवः।।"
"आ बात वाहि भेषजं वि बात वाहि यद् रवः।
त्वं हि विश्वभेषजो देवानां दूत ईयसे।।"

(ऋ0 10 137. 2–3 अथर्व 4. 1322–3)

इन दोनों मन्त्रों में प्राण और अपान दोनों प्रकार की वायुओं का निर्देश किया गया है। यहाँ से प्राण वायु शरीर में बल भेजने और अपान वायु से शारीरिक मलों के बाहर निकलने के लिए कहा गया है। मन्त्रार्थ इस प्रकार है– श्वास निश्वास रूप दो वायु चलती हैं। एक बाहर से समुद्र तक और दूसरी समुद्र से बाहर के वायुमण्डल तक। हे मनुष्य, यह पहली वायु तुझे बल प्राप्त कराए और दूसरी तेरे शारीरिक दोष को अपने साथ बाहर ले आए। हे शुद्ध वायु ! तू अपने साथ औषध को ला। हे वायु ! शरीर में जो मल है उसे तू बाहर निकाल। तू सब रोगों की दवा है, तू देवों का दूत होकर विचरता है।

यहाँ पर 'समुद' से अभिप्राय फेफड़ों का रक्त समुद्र और वायुमण्डल का अभिप्राय फेफड़ों से बाहर का वायुमण्डल हो सकता है। तात्पर्य यह होगा कि हमारा हृदय शरीर के अशुद्ध रक्त को शुद्ध होने के लिए फेफड़ों की सूक्ष्म नलिकाओं में पहुँचा देता है तब वह स्वच्छ वायु फेफड़ों में पहुँच कर रक्त नलिकाओं में विद्यमान अशुद्ध रक्त से संयुक्त होकर अपनी आक्सीजन के द्वारा अशुद्ध रक्त को शुद्ध करके बाहर निकालने वाले निःश्वास रक्त के मल को बाहर निकाल देती है। परन्तु प्रदूषित वायु में श्वास लेने से यह प्रकिया सम्भव नहीं हो पाती।

वनस्पतियों द्वारा वायु शोधन

यह एक वैज्ञानिक तथ्य है कि कार्बन डाइ आक्साइड की मात्रा आवश्यकता से अधिक बढ़ जाने पर वायु प्रदूषित हो जाती है, पर वनस्पतियाँ और पेड़ पौधे कार्बन डाइ आक्साइड को ग्रहण कर हम मनुष्यों के लिए आक्सीजन छोड़ते हैं। अतः वेद का कहना है कि वायु प्रदूषण से बचने के लिए वनस्पति

'वनं आस्थाप्यध्वम्'

(10. 101 11)

अर्थात् वन में वनस्पतियाँ उगाओ। 'वृक्षारोपण करो' वन महोत्सव मनाओ। यदि मनुष्य अपने स्वार्थ के लिए वनों व वनस्पतियों को काटता ही रहा और नए वृक्ष नहीं लगाता तो पृथ्वी पर कार्बन डाइ आक्साइड की मात्रा बढ़ जाएगी जिससे धन–धान्य, वन–वनस्पतियाँ सब नष्ट हो जाएँगी पर्वतों पर जमी बर्फ पिघलने लग जाएगी जो जल प्लावन का कारण बन सकती है। ऐसी स्थिति में वेद मानवता की रक्षा हेतु कह उठता है –

"अयं हि त्वा स्वधितिस्तेतिजानः
प्रणिनाय महते सौभाग्याय।
अतस्वं देव वनस्पते शान्तवल्शो विरोह,
सहस्रवल्शा वि वयं रुहेम।"

(यजुर्वेद 5 43)

अर्थात् हे वनस्पति ! इस तेज कुल्हाड़े ने महान सौभाग्य के लिए तुझे काटा है, तेरा उपयोग हम सहस्रांकुर होते हुए करेंगे। अभिप्राय यह है कि यदि पेड़ पौधों को काटना ही पड़े तो ऐसे काटें कि उसमें सैकड़ों स्थानों पर पुनः अंकुर फूट जाएँ जो वायु प्रदूषण के निवारण में सहायता करें। वृक्ष वनस्पतियों से सम्बन्धित वेद के निम्न स्थल भी ध्यातव्य हैं जहाँ कहा गया है कि 'ओषधीः प्रतिमोदध्वं पुष्पवती प्रसूवतीः' (ऋ0 10 97 3) अर्थात् फूलों से लदी औषधियाँ लहलहाती रहे।

अन्यश्च–

"यावतीः कियतीश्चेमाः पृथिव्यामध्योषधीः।
ता मा सहस्रपर्ण्यो मृत्योर्मुन्चत्वहसः।।

(अथर्व 6. 10 6)

अर्थात् वैदिक ऋषि कामना करता है कि पृथ्वी पर जितनी भी सहस्रों पत्तों वाली औषधियाँ हैं वे सब हमें प्रदूषण जनित मृत्यु से छुड़ाएँ। यहाँ वेद मन्त्र में बताया गया है कि प्रदूषण घातक भी हो सकता है। अतः असामयिक मृत्यु से बचने के लिए मंत्रगत 'सहस्रपर्णी' शब्द अतीव सार्थक है, क्योंकि वृक्षों के पत्तों में ही

प्रदूषण को हरने की शक्ति होती है। इसी भाँति वेद में कहा गया है *'अश्वत्थ वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता'* (ऋ0 10. 97 5, यजु0 12, 97 तथा 35 4, तैत्तिरीय संहिता 4.2 6.2) अर्थात् तुम पीपल के नीचे बैठो और पलाश (ढाक) के पेड़ों के समीप बस्ती बसाओ।
अथर्ववेद में—

आयने ते परायणे दूर्वा रोहतु पुष्पिणीः।
उत्सो वा तत्र जायतां हृदो वा पुण्डरीकवान्।।

(अथर्व. दे. 196)

कहकर घरों के बाहर आने जाने के रास्ते में दोनों ओर फूलों वाली दूब घास लगाने और मैदान में फव्वारा एवं कमलों से अलंकृत सरोवर बनाने का निर्देश दिया गया है। यह सब पर्यावरण को शुद्ध पवित्र रखने के ही तो उपाय हैं। यजुर्वेद में सोलहवें अध्याय में *'वनानां पतये नमः' 'वृक्षाणां पतये नमः' ' अख्यानां पतये नमः'* प्रभृति शब्दों से राष्ट्र की ओर से वृक्षों, औषधियों व आख्यकों के रक्षक नियुक्त करने तथा उन रक्षकों को उचित सम्मान देने का निर्देश मिलता है। आजकल, वायु एवं भूमि के प्रदूषण के कारण तथा कृत्रिम रासायनिक खादों के प्रयोग से अन्न भी प्रदूषित हो रहा है। परन्तु वेद इसके लिए भी सतर्क हैं और 'अन्नपतेन्न्स्य नो देहि अनमीवस्य शुष्मिणः।' (यजु. 11.83) कहकर कामना करता है कि हमारा अन्न दूषित एवं रोगोत्पादक न होकर शक्तिदायक हो।"

सहायक शिक्षा सलाहकार (संस्कृत)
मानव संसाधन विकास मंत्रालय
शास्त्री भवन, सी विंग, नई दिल्ली

विज्ञान वार्ता

चाय

इंडियन साइंस कांग्रेस 2002 में पर्यावरण एवं स्वास्थ्य विषय के अंतर्गत राष्ट्रीय चाय बोर्ड के सौजन्य से एक सत्र में चाय के प्रतिआक्सीकारक प्रभाव पर चर्चा हुई। नेशनल टी रिसर्च फाउंडेशन के अध्यक्ष डॉ0 आर0एस0 झावर ने चाय के औषधिक पक्ष की चर्चा करते हुए बताया कि विगत 50 वर्षों में विश्वव्यापी आयु दर बढ़ने का मुख्य कारण चाय के सेवन में वृद्धि ही है। चाय में विटामिन ए.बी.ई. के व जिंक के अतिरिक्त क्लोराइड भी पाया जाता है। इसके सेवन से कैंसर व दंत क्षय को नियंत्रित किया जा सकता है। सिगरेट व पान के दुष्परिणामों को भी चाय के द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है। चाय अब गोली, कैप्सूल आदि के रूप में भी उपलब्ध है। प्रख्यात वैज्ञानिक जॉन वाइज बर्गर चाय के अधिकाधिक प्रसार के लिए जागरूकता अभियान के पक्षधर हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ के खाद्य व कृषि संगठन ने भी चाय को प्राथमिकता क्षेत्र में सम्मिलित किया है। भारत में नब्बे फीसदी से अधिक लोग काली चाय का सेवन करते हैं जबकि केवल दस फीसदी ही ग्रीन चाय का सेवन करते हैं हालाँकि दोनों चाय की रासायनिक गुणवत्ता एकसमान ही है। डॉ0 झावर ने चाय की पुरजोर वकालत करते हुए चीनी लोकोक्ति का हवाला दिया कि प्रतिदिन एक कप चाय द्वारा इलाज, चार कप से यौवन और आठ कप से अमरत्व प्राप्त किया जा सकता है। प्रख्यात चाय विशेषज्ञ और पचास से अधिक शोध पत्रों के लेखक अमेरिका के डॉ0 हसन मुख्तार ने बेहतर स्वास्थ्य के लिए चाय के उत्तरोत्तर सेवन पर बल दिया। उनके अनुसार चाय अनेक रसायनों का मिश्रण है जिनमें से अनेक बेहतर स्वास्थ्य के लिए अनिवार्य माने जाते हैं। उन्होंने प्रयोगशाला में कैंसरग्रस्त चूहों में चाय का प्रभाव जानने के लिए अनेक परीक्षण किए। चाय के सेवन से अधिकांश चूहों में कैंसर प्रतिरोधक क्षमता में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई। डॉ0 मुख्तार के अनुसार चाय कैंसर के अतिरिक्त रक्तचाप, त्वचा की बीमारी, आर्थ्राइटिस, मधुमेह, रतौंधी, मूत्र रोग, पार्किसन रोग तक में लाभदायक है। चाय की वाइरल प्रतिरोधक क्षमता की जानकारी भारत व चीन को आदि काल से ही थी। तीव्र ज्वर से पीड़ित रोगी को चाय पिलाना आम बात है। विगत एक दशक से सौंदर्य उत्पादों के निर्माण में भी चाय का बखूबी उपयोग किया जा रहा है। चाय को सुंदरता का प्रतीक भी माना जाने लगा है। डॉ0 मुख्तार ने प्रचलित अंधविश्वास का पुरजोर खंडन किया कि दूध मिलाने से चाय की गुणवत्ता प्रभावित होती है। उनके अनुसार इससे चाय का मुख्य तत्व पालीफिनोल पूर्णतः अप्रभावित रहता है। इंडस्ट्रियल टॉक्सिकोलोजी रिसर्च सेंटर, लखनऊ के योगेश्वर शुक्ला ने स्तनधारियों पर सांद्रित काली चाय के प्रभाव का अध्ययन किया। इससे ट्यूमर की संभावना में काफी कमी दर्ज की गई। उल्लेखनीय है कि चालीस फीसदी चूहों में प्रयोग के दौरान ट्यूमर का कतई प्रभाव नहीं पड़ा। चाय से ट्यूमर कोशिकाओं का क्षय हुआ। ❑

नदी नाले से करोड़ों रुपये की तेल-बिजली की बचत

मंगल सिंह लोधी

यों तो हमारा देश ही नहीं, संपूर्ण विश्व डीजल, बिजली एवं वातावरण को प्रदूषित होने से बचाने के लिए प्रयासरत एवं चिन्तित है। हमारे देश में तो इसी कार्य हेतु केन्द्र सरकार एवं प्रदेश सरकार के अनेक विभागों, संस्थानों के साथ साथ कई स्वयंसेवी संस्थाएँ लगी हुई हैं एवं करोड़ों अरबों रुपयों की धनराशि व्यय कर रही हैं। पेट्रोलियम कन्जर्वेशन रिसर्च एसोसिएशन (पीसीआरए) तो एक एक बूँद तेल को बचाने के लिए बड़ी धनराशि प्रचार प्रसार में व्यय कर रही है। अनेक बार दूरदर्शन पर तेल बचाने की बात तरह तरह से प्रचार के रूप में देखने को मिलती है चाहे इसका असर जनता पर पड़ रहा हो अथवा नहीं।

इन सबके बाद भी सबका ध्यान हमारे देश की अनेकानेक छोटे बड़े नदी नालों की तरफ नहीं जाता जिनमें निरन्तर वर्ष भर या मार्च, अप्रैल तक पानी की अखण्ड जलधारा बहती रहती है। ये वास्तविक रूप में हमारे देश का कई हजार करोड़ रुपयों के डीजल तथा बड़ी मात्रा में बिजली बचा सकते हैं। दूर दराज के इलाकों में लाखों हेक्टयेर भूमि नदी नालों के किनारे सिंचाई के अभाव में जहाँ किसान मात्र वर्षा पर निर्भर रहकर सिर्फ खरीफ की फसल ले पाता है बाकी पूरे आठ नौ माह बेकार खाली पड़ी रहती है।

हम नई तकनीकी दूसरे देशों से आयात करने की बात करते हैं और अन्य देशों से कई गुना अधिक मूल्य देकर नई तकनीकी के आयात करने में विदेशी मुद्रा व्यय होती है, और स्वदेशी तकनीक की अक्सर उपेक्षा की जाती है। चाहे वह विदेशी तकनीकी से कितनी ही सरल, सस्ती, टिकाऊ एवं उपयोगी क्यों न हो। यहाँ मैं उदाहरण के लिए स्वयं के द्वारा आविष्कृत मंगल टरबाईन पंप एवं आस्ट्रेलिया से आयातित टाइसन टर्बाइन पंप का जिक्र कर रहा हूँ।

मंगल टर्बाइन बहती हुई जलधारा से चलती है। जैसे रोड पर वाहन दौड़ता है वैसे ही चलती जलधारा से टर्बाइन चलता है। सौ फुट ऊपर तथा एक दो किमी0 दूर पाइप लाइन से खेतों में पानी सिंचाई हेतु ले जा सकते हैं तथा गाँव में ही स्थानीय कारीगर (लुहार बढ़ई) बाजार से कुछ सामान क्रय करके उसे बनाकर स्थापित करके चालू कर सकता है एवं ट्यूबवेल की भाँति 400-500 एकड़ तक की सिंचाई (कृषकों के समुदाय की) बिना डीजल तथा बिजली के कर सकता है। टाईसन आस्ट्रेलिया का प्लास्टिक एवं फाइबर का बना हुआ है जो सिर्फ भाखड़ा या हरिद्वार की गंगा जैसी बड़ी जलधारा में ही 5 फुट गहरे पानी में ही चल सकती है एवं हैंडपंप जैसे पानी का डिस्चार्ज देता है जिससे मात्र एक एकड़ की खेती भी नहीं सींची जा सकती जबकि मंगल टर्बाइन से दो सौ एकड़ भूमि में लहलहाती गेहूँ की अच्छी फसल की सिंचाई संभव है।

पठारी क्षेत्रों में जहाँ 50-60 फीट यहाँ तक कि 100-100 फीट की गहराई तक कुआँ खोदने पर पत्थर निकलता है पानी के दर्शन दुर्लभ होते हैं कुओं में, किन्तु जमीन के ऊपर प्रत्येक 5-10 किमी0 की दूरी पर नदी नालों में बहती हुई जलधाराएँ देखी जाती हैं। ऐसे इलाकों में हजारों लाखों डीजन पंप तड़ फट फट फट करते देखे जा सकते हैं अर्थात् 90 प्रतिशत डीजल पंप एवं विद्युत पंप नदी नालों के पानी को लिफ्ट करने में लगे हुए हैं। किसान ग्रामीण इलाकों में अपनी साइकिल पर 20-20 लीटर की जरीकेन डीजल लाने के लिए लटकाए मिलते हैं।

वातावरण को काले धुएँ (जहर) से प्रदूषित होने से बचाने के लिए भी तरह तरह के उपाय हो रहे हैं एवं अपार धन व्यय किया जा रहा है जबकि जल धारा से ऊर्जा प्राप्त करने या मंगल टर्बाइन प्रयोग में

लाने से प्रदूषण का प्रश्न ही पैदा नहीं होता। ग्रामीण विद्युतीकरण निगम (आर्रसी) (रुरल इलेक्ट्रीफिकेशन कारपोरेशन) करोड़ों अरबों की धनराशि दूरदराज के इलाकों में विद्युत लाइनों के निर्माण पर व्यय कर रहा है जबकि स्थानीय बहती हुई जलधारा से मामूली लागत में ऊर्जा प्राप्त करके स्थानीय आवश्यकता की पूर्ति की जा सकती है। म0प्र0 में तो दूरदराज के इलाकों के बस्तर जैसे आदिवासी क्षेत्रों में जंगल काटे बगैर विद्युत लाइनें नहीं डाली जा सकतीं। यही कारण है कि अनेक दूरदराज के गाँवों में विद्युत नहीं पहुँच सकी और गरीब ग्रामीण विद्युत रोशनी या सिंचाई सुविधा से वंचित हैं।

सदियों से न केवल हमारे देश में बल्कि विश्व के अनेक देशों में आटा पिसाई का कार्य पानी से चलने वाली आटा चक्की से होता चला आ रहा है इसलिए आम भाषा में देहातों में आज भी आटा पिसाई वाली चक्की चाहे वह भले ही विद्युत मोटर या डीजल इंजन से क्यों न चलती हो 'पनचक्की' ही कहते हैं। वैसे पानी से चलने वाली चक्की को आम तौर पर 'घटाट भी कहते हैं। पहाड़ों से (उत्तराखंड में) झरने निरन्तर 12 माह बहते रहते हैं जिनकी छोटी जलधारा से प्राचीन काल से ही छोटी–छोटी घटाटे (पनचक्कियाँ) आटा पीसने का कार्य करती रही हैं। लेकिन आज के विज्ञान के युग में जबसे विद्युत लाइनें गाँव–गाँव मे पहुँची हैं तक से 99.9 प्रतिशत पनचक्कियाँ बंद हो चुकी हैं और आटा पिसाई का कार्य विद्युत चालित आटा चक्कियों से होने लगा है। कुछ गरीब महिलाएँ ही हाथ से आटा पीसने का कार्य करती हैं। विद्युत या ईंधन चालित आटा चक्कियों के पाट ऐमरी, स्टोन, सीमेंट व कई रसायनों के बनते हैं तथा 1000 चक्कर प्रति मिनट की गति से चलती है। जिससे एक ओर अनाज में मौजूद 50 प्रतिशत विटामिन तत्व जलकर नष्ट हो जाते हैं वहीं दूसरे अन्न का स्वाद नहीं रह जाता है जबकि पनचक्की या घरेलू चक्की के पाट देशी पत्थर के बने होते हैं गति मात्र 30–35 चक्कर प्रति मिनट पर ही पिसाई का कार्य करते हैं जिससे आटे के स्वाद मे कोई फर्क नहीं पड़ता और अन्न में उपस्थित तत्व भी नष्ट नहीं होते हैं। इंजन/मोटर चालित चक्की के एमरी स्टोन के पाटों के अधिक गति (1000 आरपीएम) पर चलने के अक्सर छोटे छोटे टुकड़े टूटकर आटे के साथ पिसते रहते हैं जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।

वर्तमान में हो रहे आबादी के भयंकर विस्फोट के कारण विद्युत का संकट और भी दिन पर दिन बढ़ता ही जा रहा है। इस सब पर ध्यान रखकर हमें चाहिए कि देश में जहाँ जहाँ जितनी भी छोटी से छोटी बहती हुई जलधाराएँ हैं उनका उपयोग अवश्य किया जाए चाहे उसका उपयोग कृषि सिंचाई में हो या किसी अन्य उद्योग को चलाने में या लघु विद्युत उत्पादन या आटा पिसाई के लिए हो।

विद्युत चालित चक्कियों पर तो अक्सर बिजली गुल होने से आटा पिसाने वाले लोग घंटों इंतजार तो क्या कभी कभी तो खाली हाथ बैठे दिन भर ऊंघते रहते हैं या ग्रामीणो को अपना अनाज छोड़कर या वापस लेकर जाना पड़ता है। यही हाल डीजल चालित इंजनों का है, कभी इंजन खराब, तो मिस्त्री नहीं आया, तो कभी डीजल नहीं तथा काला धुआँ (जहर) उगलने से फट फट की भंयकर आवाज ध्वनि प्रदूषण से सारे गाँव की नींद हराम रहती है जबकि पनचक्कियों में इस प्रकार से कोई समस्या नहीं है। अंग्रेजी शासन काल में सैकड़ों स्थानों पर घराटें लगवाई गई थीं जिनमें से अधिकांशतः लगभग 90–95 प्रतिशत को बंद कर दिया गया है।

अगर हम चाहें तो सदाबहार नहरों से प्रत्येक 1–2 या 3 किमी0 पर बनी काल पर जहाँ हम मात्र 2.2 प्रतिशत पानी ही घराट चलाने के लिए प्रयोग में लेते हैं या लेते थे। शेष पानी 4.5 मीटर की ऊँचाई से सैकड़ों क्यूसेक की मोटी जलधारा सीधी गिरकर नहरों में चली आती है। उस जलधारा से ऊर्जा प्राप्त कर हम पर्यावरण की रक्षा कर सकते हैं। अब लकड़ी ईंधन की किल्लत भी पैदा होने लगी है। ग्रामीण क्षेत्रों में लगभग लकड़ी समाप्त हो रही है। तब तो फलदार वृक्षों की शाखाओं से भी रोटियों के सेंकने कार्य चालू हो गया है। जल धारा से ऊर्जा प्राप्त करके हम आबादी के कुछ प्रतिशत हिस्से को खाना पकाने के लिए विद्युत देकर पेड़ों एवं पर्यावरण की रक्षा कर सकते हैं।

यदि गंभीरता से विचार करें तो इसमें कोई दो राय नही कि मंगल टर्बाइन तेल एवं प्रदूषण बचाने एवं कृषि उत्पादन बढ़ाने में काफी बड़ी भूमिका निभा सकती है साथ ही नदी नालों में एक सीरीज में चैक डैम बनाकर लगाने से जहाँ जल संरक्षण, जल संचय एवं भूमि में जल स्तर बरकरार रहेगा एवं सिल्ट भी रुकेगी जिससे राष्ट्रीय जलागम कार्यक्रम को बल मिलेगा। इस

प्रकार जहाँ बहती हुई जलधारा जो मार्च, अप्रैल में ही समाप्त होने लगती है, वह मई, जून तक भी यानि सम्पूर्ण वर्ष भर निरन्तर उपलब्ध रह सकेगा।

ईंधन रहित मंगल टर्बाइन पंप का चित्र सहित विवरण जिसे बहती हुई जलधारा से बिना डीजल, बिना बिजली, बिना इंजन एवं बिना मोटर के सिंचाई कर सकते हैं–

ईंधन रहित मंगल टर्बाइन पंप एवं पी.टी.ओ. मशीन

भूमिका :

भारत एक कृषि प्रधान देश है। जहाँ अनेक नदी एवं नाले हैं। बहुत से किसान इन नदी नालों पर डीजल व बिजली के पंप लगाकर अपने खेतों की सिंचाई करते हैं जिसमें डीजल या बिजली की जरूरत होती है। परन्तु अब इन जल धाराओं की ऊर्जा को ईंधन रहित इलाकों में मंगल टर्बाइन पंप एंव पी.टी.ओ. मशीन द्वारा दूर–दराज के इलाकों में पानी उठाकर सिंचाई करने या अन्य ग्रामीण कार्यों को करने में उपयोग में लाया जा सकता है। इस मशीन को चलाने के लिए एक मीटर तक पानी के स्तर की जरूरत पड़ती है। जिसको सस्ते 'चैक डैम' द्वारा प्राप्त किया जाता है।

संरचना

ईंधन रहित मंगल जल चक्र टर्बाइन पंप एवं पी.टी.ओ. मशीन में एक जल चक्र होता है जो एक स्टील शाफ्ट पर मजबूती से जड़ा रहता है और यह शाफ्ट दो बियरिंग ब्लाक पर सधा रहता है। बियरिंग ब्लाक जलचक्र के दोनों तरफ बनाई गई मजबूत दीवालों पर बोल्टों द्वारा कसे रहते हैं। स्टील शाफ्ट गियर बाक्स में यूनीवरसल कपलिंग द्वारा जुड़ा रहता है। गियर बाक्स द्वारा आउट पुट शाफ्ट के चक्कर बढ़ाए जाते हैं जिसके द्वारा सेन्ट्रीफ्यूगल पंप द्वारा पानी उठाया जाता है। आउटपुट शाफ्ट के दूसरे शाफ्ट पर पी.टी.ओ. पुली लगी रहती है जिसके द्वारा अन्य मशीनें चलाई जाती हैं। जल चक्र टरबाइन मशीन की डिजाइन सरल है। जो कि विभिन्न माप का उपलब्ध है और बदलती हुई जरूरतों को पूरा करती है।

संचालन

ईंधन रहित मंगल जल चक्र टर्बाइन पंप एवं पी.टी.ओ. मशीन चलाने में बहुत आसान है। बूढ़े, जवान एवं बच्चे जरूरत के अनुसार लकड़ी या स्टील के गेट वाल्व को खोलकर चला सकते हैं। मशीन को बन्द करने के लिए गेट से बहते हुए पानी को वाल्व द्वारा रोक दिया जाता है।

विशेषताएँ

मंगल जल चक्र टर्बाइन पंप एवं पी.टी.ओ. मशीन की प्रमुख विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं :–

1. पंप या किसी अन्य मशीन को चलाने के लिए डीजल अथवा बिजली की जरूरत नहीं पड़ती है।
2. जल चक्र मशीन की डिजाइन सरल है अतः यह मशीन बनाने एवं चलाने में सरल है।
3. उपलब्ध जल स्तर से कई गुना ऊँचाई तक पानी उठाया जा सकता है।
4. पानी उठाने के अलावा जलचक्र मशीन से अन्य अनेक ग्रामीण कार्य जैसा आटा पिसाई, गन्ना पिराई, तेल संप्रसरण, चारा कटाई (कुटी) आदि कार्य उपयुक्त मशीन को चलाकर किए जा सकते हैं।
5. जल चक्र मशीन से वायुमंडल प्रदूषण का कोई खतरा नहीं है।
6. जल चक्र मशीन द्वारा देश के दूर दराज इलाकों में ऊर्जा का स्वच्छ विकल्प साधन मिल जाता है। जिससे उन इलाको की कृषि उत्पादकता, ग्रामीण रोजगार एवं आय बढ़ाने में मदद देता है।
7. जल चक्र मशीन द्वारा बड़े क्षेत्र की सिंचाई की जा सकती है। ऊर्जा परिवर्तन योग्यता भी अधिक है तथा चालन व्यय न्यून है।

उपयोगिता

ईंधन रहित मंगल जलचक्र टर्बाइन पप एवं पी.टी.ओ. मशीन का उपयोग नदी नालों से पानी उठाने के लिए किया जाता है जहाँ यह मशीन स्थापित रहती है। इस मशीन का उपयोग अनेक प्रकार के देहाती कामों जैसे आटा चक्की, गन्ना पिराई, गहराई एवं ओसाई, तेल पिराई एवं कुटी कटाई आदि में किया जा सकता है। यह मशीन देहाती इलाकों में कृषि उत्पादकता, आय एवं रोजगार बढ़ाने का ऊर्जा का साफ सुथरा विकल्प (अपारम्परिक) साधन है।

कृषक व अन्वेषक
ब्लाक बार, जनपद–ललितपुर–284123
(उत्तर प्रदेश)

शहरी जन्तु

डॉ0 विष्णुदत्त शर्मा

दुहाई है! दुहाई है!! दुहाई है!!! पशुपति महाराज के दरबार में दुहाई है। (हाँफते हुए लोमड़ ने अपने राजा को खबर दी)

'क्या बात है लोमड़ दूत' राजा ने उत्सुकता से पूछा।

लोमड : हे वनाधिपति! मैं अभी अभी शहर की तरफ से आ रहा हूँ और देखा कि शहर से कुछ दो पैरों वाले जन्तु हमारे ही विश्रामस्थलों की ओर आ रहे हैं।

राजा : (गृद्धराज को बुलाकर) हे गृद्धराज! तुम आकाश मार्ग से पता लगाओ कि शहर से दो पैरों वाले जन्तु क्या इधर ही आ रहे हैं ? यदि ऐसा है तो उसकी पूरी सूचना इकट्ठी कर हमें बतलाओ।

गृद्धराज : 'जो आज्ञा', कहकर तेज गति से उड़ता हुआ आकाश से सभी दृश्य देखा और आकर राजा को सूचना दी।

राजा : 'आओ गृद्धराज! क्या खबर लाए हो ?'

गृद्धराज : जंगलाधिपति! कुछ दो पैरों वाले शहरी जन्तु अपने सैकड़ों साथियों के साथ इधर ही आ रहे हैं। सभी के हाथों में लाठी, तलवार, बंदूक, कुल्हाड़ी, टार्च, ढोल, मशाल, फावड़े, रस्सी और खाली कनस्तर आदि हैं।

शेरसिंह (राजा) : गृद्धराज! शहरी जन्तुओं का अपना दल बल के साथ आना क्या हमारे अस्तित्व या अभयारण्य के पर्यावरण को खतरा तो नहीं ?

गृद्धराज : राजन् ! उन दो पैरों के जन्तुओं की नीयत ठीक नहीं है।

शेरसिंह : (आश्चर्य से) वह कैसे ?

गृद्धराज : वनाधिपति! वे लोग अपने साथ कुछ ट्रक भी ला रहे हैं। इससे यह जाहिर होता है कि या तो वे हमारी संरक्षित वन सम्पदा ले जाना चाहते हैं या हमारे कुछ साथियों को बंदी बनाकर ले जाएँगे और सर्कस–कारागार में बंद कर देंगे।

शेरसिंह : तुम अपने साथ उलूक अहमद को भी ले जाओ ताकि रात में वह तुम्हारी मदद से उनकी चालों को बता सके। सजग होकर आकाश से उन्हें देखना।

गृद्धराज : कृपया तुरंत कोई कार्रवाई करें क्योंकि उनके दल–बल को देखकर हमारे मन में शंका है।

राजा : तत्काल सभी अभयारण्य के पशुओं की आपात बैठक बुलाई जाए। (मंत्री भालू सिंह से कहा) वन के सभी प्रमुख जन्तु एकत्र हो गए और बैठक की अध्यक्षता अरण्याधिपति शेरसिंह ने की।

राजा सिंह की गर्जना : वन के सभी शाकाहारी एवं मांसाहारी साथियों! हम इस अभयारण्य में अनादि काल से रह रहे हैं। एक समय था जब इन वनों में ऋषि–मुनि भी हमारे साथ रहते थे। उन्होंने कभी भी चार पैर वाले पशुओं का न कभी वध किया और न हमारे जीवन में कोई परेशानी पैदा की। यहाँ तक कि हमारा आपस में इतना प्यार था कि बाघ और बकरी नदी में एक ही घाट पर पानी पीते थे। ऋषि–मुनियों के आश्रम में हिरण रहते थे और कण्व ऋषि के आश्रम में तो सिंह–शावक भी थे जिनके साथ शकुन्तला का पुत्र भरत खेलता था। आज शहरी जन्तु ने हमारे आराम में विघ्न डाला है, अतः उससे सबको मिलकर टक्कर लेनी होगी। दुश्मन और बीमारी को कमजोर नहीं समझना

चाहिए।

भालू सिंह (मंत्री) : हे जंगलाधिपति! भेड़िया और लकड़बग्घा के बारे में आपकी क्या राय है ?

राजा : भेड़िया पर विश्वास न करना लेकिन लकड़बग्घा शहरी जन्तु के शिशुओं को जरूरत पडने पर अपनी पीठ पर लादकर ला सकता है। लेकिन अच्छा यही होगा कि तुम इन्हें अपनी सेना से दूर रखो। क्योंकि भेदिया (भेड़िया) धोखेबाज पशु है और न जाने कब धोखा दे दे।

गजराज (सेनापति) : हम अपनी रणनीति के अनुसार सर्वाधिक कमजोर और मासूम मृगराज की सेना भेजते हैं। क्योंकि आत्मरक्षा करना हमारा सभी का अधिकार है।

दूसरे दिन हिरणों का एक झुंड शहरी जन्तुओं की ओर जैसे ही पहुँचा वैसे ही उन दो पैरों के प्राणियों ने कुछ हिरण बंदी बना लिए और कुछ हिरणों को मार दिया तथा भूखे-प्यासे शहरी जन्तु उन हिरणों को खा गए। कुछ हिरण वापस राजा के पास आकर शहरी जन्तुओं के कारनामों को बताने लगे।

मृगराज : हिरणों के कमांडर मृगराज ने बताया कि शहरी जन्तु कुछ गहरे गड्ढे खोदकर उन्हें पेड़-पत्तों से ढँक रहे हैं। शायद वे हमारे सेनापति गजराज को बंदी बनाना चाहते हैं। जंगलाधिपति शेर सिंह ने पूछा कि तुम यह बात किस आधार पर कह रहे हो ?

'राजन' ! मैंने देखा है कि एक हाथी के छोटे बच्चे को उन्होंने गड्ढे में लोभ देकर गिरा दिया- भयभीत मृगराज ने कहा।

राजा (आश्चर्य से) : यह लोभ देकर कैसे ?

मृगराज : अरण्याधिपति् यह लोभ ऐसा ही है जैसे किसी पेड़ से बकरी बाँधकर शेर को आकर्षित करना।

राजा : शहरी जन्तु इन्हें पकड़कर क्या करेंगे ?

मृगराज : राजन, ये लोग शेर, हाथी, चीता आदि को बाँधकर सर्कस-कारागार में रख कर उन्हें हंटर के डर से नचाते हैं।

लोमड़ : वनाधिपति ! शहरी जन्तुओं ने न केवल हमारे वन के प्राणियों को बंदी बनाया है, बल्कि ढोल-कनस्तर बजाते हुए हाथ में जलती मशाल लेकर शोर मचा रहे हैं। इस प्रकार सभी वन्य जीव अपने अपने स्थान छोड़कर भाग रहे हैं। वन्य जीवों के भाग जाने पर उन्होंने पेड़ों की कटाई शुरू कर दी है। इस प्रकार हमारे अभयारण्य के काफी भू-भाग पर कब्जा कर लिया।

भेड़िया : राजन, मैं नदी पर पानी पीने गया तो देखा कि उन्होंने हमारी नदी के पानी को भी दूषित कर दिया।

लकड़बग्घा : राजन, कल ही शहर से मैं एक बच्चे को उठाकर लाया हूँ। मैंने देखा कि शहर में इतना शोर और धूल-धुआँ है कि जीवन दूभर है। इन शहरी जन्तुओं से तो वहाँ के प्राणी भी परेशान है, शायद इसी कारण हमारे सुंदर वनों की ओर ये प्राणी पलायन कर रहे हैं। फलस्वरूप हमारा जीवन भी यहाँ प्रदूषित हो जाएगा।

मंदाकिनी नदी के किनारे प्रमोद वन में आज बहुत शोर मच रहा है। कौतुहलवश कुछ ऐसा ही जैसा लंकाधिपति रावण के दरबार में हनुमान की पूँछ में रुई-कपड़े लपेटकर आग लगाने का दृश्य हो। शांत रहने वाले जानवरों में अफरा-तफरी मची हुई थी। बंदर खू-खू करके एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर कूद रहे थे। चिड़िया भी चीं-चीं करके शोर को बढ़ा रही थीं। प्रमोद वन और पास के जंगलों के जानवरों ने एक शहरी जन्तु को पकड़ रखा था। उस शहरी जन्तु के चेहरे पर भय के बादल मँडरा रहे थे। डर के मारे उसका चेहरा पीला पड़ गया था। अभयारण्य के मंत्री भालू सिंह उसे धक्के मारकर आगे धकेल रहा था। रस्सियों में जकड़ा शहरी जन्तु बड़ी मुश्किल से आगे कदम बढ़ा रहा था और भविष्य को सोचकर चिंतित था। लोमड़, भेड़िए और लकड़बग्घे ने उसकी रस्सी पकड़ रखी थी। जानवरों के छोटे-छोटे बच्चे शोर करते हुए उसे लातों से मार रहे थे और पीछे पीछे चल रहे थे।

जँगलाधिपति शेर सिंह कुछ ही देर पहले नींद

से जागे थे तथा अपनी गुफा के बाहर लेटे धूप सेंक रहे थे। पास ही सेनापति गजराज मीठे-मीठे गन्नों की दातून कर रहे थे। शोर सुनकर जंगल के राजा शेर सिंह ने सिर उठा कर देखा और अपने सेनापति गजराज से बोले, "सेनापति जी, जरा देखिए यह शोर कैसा हो रहा है ?" सेनापति गजराज ईख का बंडल मुँह में दबाते हुए देखा है। "राजन, भालू सिंह अपने सैनिकों के साथ आदमी नाम के जन्तु को पकड़कर ला रहे हैं।

आदमी को ?– पशुपति शेर सिंह आश्चर्य से बोले।

हाँ अरण्याधिपति, यही तो है वह शहरी जन्तु जिसने शहर में धुएँ और शोर से शहर और गाँव वालों की नींद हराम कर रखी है और अब जंगल का वातावरण व पर्यावरण प्रदूषित करने आ गया है। यहाँ तक कि अपने भगवान, जो उसके अंदर है, को पाने के लिए धार्मिक स्थलों पर लाउडस्पीकर से शोर मचाकर सभी का जीना मुश्किल कर रखा है।

फिर तो आदमी हम जंगली पशुओं से अधिक खतरनाक है ?

गजराज (सेनापति) : राजन, हमारे बीच जो माँसाहारी पशु हैं वे ही केवल अपना पेट भरने के लिए हिंसा करते हैं लेकिन ये शहरी जन्तु तो पेट भरने पर ही हिंसा करते हैं।

इतने में मंत्री भालू सिंह ने रस्सियों में जकड़े हुए आदमी को राजा शेर सिंह के सामने पटक दिया। यह शहरी जन्तु कराह उठा और भयभीत आँखों से वनाधिपति शेर सिंह की तरफ देखा किन्तु आँखें न मिला सका।

हूं............ क्या अपराध है इसका, मंत्री भालू सिंह जी ? राजा शेर सिंह ने पूछा।

राजन, यह आदमी प्रतिदिन इस अभयारण्य से पेड़ काटता है, वन सम्पदा को नष्ट करता है और लकड़ियों को काटकर ट्रकों में लादकर शहर भिजवाता है। न जाने कब से यह ऐसा कर रहा था। अपने साथ बहुत से आदमियों को भी लेकर आ गया है। यह आज हमारे कब्जे में आया है। मंत्री भालू सिंह ने आदमी को घूरते हुए कहा।

राजन ! इसे कठोर से कठारे दंड मिलना चाहिए। सभी वन जन्तुओं ने एकसाथ कहा।

सेनापति गजराज सिंह आप क्या कहते हैं, इसके बारे में ?

राजन, सिर्फ इतना सा ही अपराध नहीं है इसका। यह इस पृथ्वी का सबसे खतरनाक जन्तु है।

वह कैसे ?

इसने दाँत के लिए हाथियों को, सींग के लिए गैंडों को और खाल के लिए हिरण एवं चीता–बाघ को मारा है।

वनाधिपति शेर सिंह ने गुस्से से आदमी की ओर देखा। आदमी भयभीत होकर सहम गया।

बाघ अली ने बीच में ही कह दिया, राजन ! यह बिना पूंछ वाला जन्तु अपने स्वार्थ के लिए न जाने कैसे कैसे हथकंडे अपनाता है। इसने अपने कुकर्मों से केवल अपनी ही नहीं, हम सबकी जान खतरे में डाल दी है। हमारी जाति के पशुओं को मारकर उसकी खाल में भूसा भरकर सजाता और अपने घर में रखता है ताकि अपनी बहादुरी का ढोल पीट सके। यह सारा प्राकृतिक सँतुलन बिगाड़ रहा है– लोमड़ ने बड़े अकड़ के साथ कहा।

राजन, सुना है कुछ लोग गलती से अपने ही पैरों पर कुल्हाड़ी मार लेते हैं, किन्तु यह तो कुल्हाड़ी पर ही पैर मार रहा है– अंगरक्षक बाघ अली ने व्यंग्य से बोला। इसने मेरे भाई को कैद कर रखा है राजन! और उसका नाच दिखाकर पैसा कमाता है। बंदर ने आँसू पोंछते हुए अपने परिवार की कथा सुनाई।

वनाधिपति! यह शहरी जन्तु हमारे अंदर फूट डालकर अपने ही परिवार के बंदरों को हमसे पिटवाता है– धैर्य धरकर लंगूर ने अपनी व्यथा सुनाई।

सिंह गर्जना करते हुए राजा शेर सिंह ने कहा, अरे बिना पूंछ के जन्तु ! तू अपने बारे में क्या सफाई देता है।

जी..जी....जी.....मैं.....मैं। थरथर काँपता हुआ

शेष पृष्ठ 29 पर

पर्यावरण कल और आज

डॉ सियाराम विश्वकर्मा, डॉ0 गिरीश पाण्डेय एवं डॉ0 देवनारायण

"पर्यावरण संरक्षित तो जीवन सुरक्षित"– यह उक्ति मात्र एक कहावत नहीं बल्कि अनिवार्य एवम् अकाट्य सत्य है। आधुनिकता के बदलते परिवेश में पर्यावरण का सराहनीय योगदान है। स्वस्थ पर्यावरण ही मानव व कृषि की आधारशिला होती है। इससे ही इनका चतुर्दिक विकास सम्भव है। वाशिंगटन के क्लाइमेट इन्टीट्यूट की रिपोर्ट (2001) में यह चेतावनी दी गई है कि एशिया के आठ देशों की जलवायु में एकाएक परिवर्तन के कारण इन देशों की एक चौथाई आबादी विनाश व तबाही के कगार पर है। यह खतरा पर्यावरण के विनाश के कारण पैदा हुआ है। ये देश हैं– भारत, पाकिस्तान, श्रीलंका, बंगलादेश, इण्डोनेशिया, मलेशिया, वियतनाम और फिलीपीन्स।

पर्यावरण का अध्यात्म : यह सर्वविदित है कि अग्नि, जल, पृथ्वी, वायु और आकाश– ये किसी न किसी रूप में मानव जीवन का निर्माण करते हैं और उसे पोषण देते हैं। इन सभी तत्वों का सम्मिलित स्वरूप ही पर्यावरण है। यजुर्वेद के शान्तिपाठ ऊँ द्यौ शान्तिः के शान्तिः इस तथ्य का संकेत करता है कि पर्यावरण सभी तत्वों को शान्त व संतुलित बनाए रखा जाए, पृथ्वी से आकाश के सभी जैविक एवम् अजैविक घटक संतुलन की अवस्था में रहें। महाभारत में यह स्पष्ट उल्लेख है कि पर्यावरण प्रदूषण के कारण मनुष्य दो प्रकार के रोगों का शिकार होते हैं। इनमें से एक रोग शरीर से सम्भावित है तो दूसरा मन से। वास्तव में ये दोनों मत परस्पर घनिष्ठता से जुड़े हुए हैं। एक के बाद दूसरा अवश्य बीमार बन जाता है। आयुर्वेद के महान व्याख्याता महर्षि चरक के अनुसार ऋतुएँ अपने शीत, ग्रीष्म, वर्षा आदि धर्म से च्युत होने लगेंगी। पृथ्वी के रस सूखने लगेंगे और भिन्न–भिन्न प्रकार की नवीन बीमारियों से मनुष्य ग्रस्त होता जाएगा। हानिकारक प्राणियों, विषाणुओं की अभिवृद्धि से प्राणी तथा वनस्पति जगत नए नए प्रकार की बीमारियों से त्रस्त रहेंगे।

अतः पेड़ पौधों की अधिकता न केवल आरोग्य बल्कि शुद्ध वायु वितरित करके स्वास्थ्य संवर्धन में सहायक होती है, वरन् जलवृष्टि का संतुलन बनाए रखने में भी सहायक होती है।

अमेरिका में कनाडा के गुलेप विश्वविद्यालय में कार्यरत सुप्रसिद्ध भारतीय वैज्ञानिक प्रोफेसर ओ.पी. द्विवेदी ने अपनी पुस्तक 'एनवायरनमेन्टल क्राइसिस एण्ड हिन्दू रिलीजन' में कहा है कि वर्तमान काल में प्राकृतिक पदार्थों, वनस्पति एवम् जीव जगत के अंधाधुंध शोषण के कारण ही पर्यावरण का इस हद तक अपकर्ष हो रहा है कि मानव अस्तित्व के लिए भयंकर संकट बन गया है। उन्होंने इसके मूल में पर्यावरणीय नीति में अतीव लापरवाही बरतना और समाज के लिए नए मानदण्डों की रचना करने में विफलता को माना है।

यदि हम ध्यान दें तो हड़प्पा एवम् मोहनजोदड़ो के उत्खनन से प्राप्त प्रमाणों से यह स्पष्ट होता है कि हमारे पूर्वजों को जल तथा वातावरण प्रदूषण की पूरी जानकारी थी और नागरिक स्वास्थ्य रक्षा के लिए हर प्रकार की व्यवस्था थी। सम्राट अशोक के समय में पर्यावरण हेतु अपराध संहिता थी। इतना ही नहीं, नगरों को प्रदूषण से बचाने के लिए विभिन्न स्थानों में वृक्ष विशेष लगाने का प्रावधान था। आज के पर्यावरण प्रदूषण से बचने का उपाय है जन जन की भागीदारी सुनिश्चित करना। यह केवल सरकारी प्रयत्नों से ही सम्भव नहीं है।

पर्यावरण संतुलन को बनाए रखने में पौधों में प्रकाश संश्लेषण प्रक्रिया अति विशिष्ट भूमिका निभाती

क्र.सं.	वायु प्रदूषण का नाम	प्राथमिक अथवा द्वितीयक	मुख्य स्रोत जिसके माध्यम से निकलते हैं
1.	ओजोन (O_3)	द्वितीयक पदार्थ	वायुमण्डलीय परिवर्तन से उत्पन्न जो स्वयंचालित वाहनों से उत्सर्जित, नाइट्रोजन डाइआक्साइड व हाइड्रोकार्बन की प्रतिक्रिया से उत्पन्न पदार्थ।
2.	सल्फर डाइ आक्साइड (SO_2)	प्राथमिक पदार्थ	फैक्ट्रियों में ऊर्जा उत्पादक यन्त्रों/मशीनों अथवा किसी ठोस पदार्थ के पिघलाने वाले संयंत्रों से उत्पन्न।
3.	नाइट्रोजन डाइ आक्साइड (NO_2)	प्रा0/द्वितीयक पदार्थ	उच्च ताप पर उत्पन्न ज्वलन प्रक्रिया के उपरान्त। सीधे उत्पन्न या वायुमण्डलीय परिवर्तन द्वारा उत्पन्न अथवा उर्वरक संयंत्रों/उत्पाद द्वारा उत्सर्जित।
4.	हाइड्रोजन फ्लोराइड (HF)	प्राथमिक पदार्थ	सुपर फास्फेट, अल्युमिनियम गलन के दौरान उत्पन्न।
5.	एथिलीन	प्राथमिक पदार्थ	ज्वलनशील प्रक्रिया अथवा प्राकृतिक उत्पाद।
6.	नाइट्रस आक्साइड(NO)	" "	तदैव .... तदैव ....
7.	क्लोरीन (Cl_2)	" "	द्रव्य बहाव/निर्माण से उत्पन्न द्रव्य।
8.	हाइड्रोजन क्लोराइड (HCl)	" "	प्लास्टिक पदार्थों के ज्वलन से उत्पन्न पदार्थ।
9.	विषैले पदार्थ	" "	पिघलन एवं ज्वलन प्रक्रिया से उत्पन्न पदार्थ।
10.	अमोनिया	" "	सल्फर डाइ आक्साइड के परिवर्तन से उत्पन्न।
11.	सल्फेट	द्वितीयक पदार्थ	सल्फर डाइ आक्सइड के परिवर्तन से उत्पन्न।
12.	हाइड्रोजन पराक्साइड	प्राथमिक पदार्थ	अखबार/पेपर उत्पादक मशीनों से उत्पन्न।
13.	नाइट्रेट	द्वितीयक पदार्थ	प्राकृतिक रूप में उत्पन्न या ज्वलनशील प्रक्रिया से उत्पन्न।
14.	कार्बन डाइ आक्साइड	प्राथमिक पदार्थ	प्राकृतिक रूप में उत्पन्न या ज्वलनशील प्रक्रिया से उत्पन्न।
15.	पैन आक्साइड	द्वितीयक पदार्थ	वायुमण्डलीय परिवर्तन से उत्पन्न या स्वयं चालित वाहनों से निकले (एन.ओ.$_2$) व हाइड्रोकार्बन से प्रतिक्रिया से उत्पन्न पदार्थ।

है। इसके लिए पृथ्वी पर 30 प्रतिशत वनों की न्यूनतम आवश्यकता है किन्तु आबादी के बढ़ते बोझ से भारत अपनी खाद्यान्न, आवास, संचार, परिवहन आदि की अतिरिक्त आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए जंगलों की अंधाधुंध कटाई में लिप्त है जिससे भारतीय भूभाग पर केवल 19 प्रतिशत ही वन क्षेत्र रह गया है जो खतरे का सूचक है।

इसके अतिरिक्त विश्व के समक्ष चिन्तनीय यह है कि दस से तीस मील की ऊँचाई पर स्थित ओजोन परत प्रदूषण की मार से निरन्तर क्षतिग्रस्त होती जा रही है। ओजोन का यह रक्षात्मक कवच जहाँ एक ओर निरन्तर उन हानिकारक प्राणियों (जिससे जीव झुलस जाते हैं) से सुरक्षित रखता है, वहीं दूसरी तरफ प्राणियों में कैंसर, अंधेपन तथा त्वचा संबंधी रोगों की वाहक बनती है।

पौधे/जीवजगत पर प्रभाव डालने वाले विभिन्न कारक

पृथ्वी पर जीवन क्रिया को संचालित रखने के लिए प्रायः ऊर्जा सूर्य से प्राप्त होती है। इसी सूर्य ऊर्जा से पौधे कार्बन डाइ आक्साइड एवं जल की उपस्थिति में प्रकाश संश्लेषण कर अपना भोजन तैयार करते हैं। परन्तु वायुमण्डलीय गैसों का भी पौधों की दिनचर्या पर काफी प्रभाव पड़ता है। बीज अंकुरण से लेकर पौधों की पत्तियों, तनों का बढ़ना और पुष्पों का खिलना प्रभावित होता है हालाँकि छोटे पौधों की अपेक्षा बड़े पौधों में

अजैविक कारणों के प्रति सहनशीलता अधिक होती है।

प्रकाश विकिरण द्वारा कोशिकाओं का मृत हो जाना, जैविक पदार्थों या छोटे–छोटे टुकड़ों में हो जाना, वाष्पन या अन्य हानिकारक पदार्थों का निर्माण होना स्वाभाविक बात होती है। समस्त जैविक क्रियाएँ 0^0 से 50^0 से० तक तापमान के अन्तर्गत हुआ करती हैं। इस ताप के सीमा से बाहर जैविक क्रियाएँ एकदम कम होती हैं अथवा रुक जाती हैं जिससे प्रकाश संश्लेषण यानी भोजन निर्माण की प्रक्रिया बन्द हो जाती है।

वायुमण्डलीय गैसों का प्रभाव

आजकल की सांसारिक आपाधापी में वाहनों, कलपुर्जों, मशीन, फैक्ट्रियों से उत्सर्जित गैसों व पदार्थों से न केवल पौध जगत बेहाल हो रहा है बल्कि मानव जगत भी ऊब की सांस लेने लगा है। पृथ्वी तल से लगभग 15 किमी० ऊपर तक की वायु से मौसम आदि प्रभावित होते हैं और जीवधारियों पर उनका प्रभाव पड़ता है। दूषित वायु में वे गैसें विद्यमान होती हैं (देखें सारणी) जो पौधों को किसी न किसी रूप में प्रभावित करते हैं। ये धूल के छोटे–छोटे कण धुएँ कारखाने की चिमनी से निकलते हैं।

आनवुंशिक एवम् पादप प्रजनन विभाग
न0दे0 कृषि एवम् प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय
कुमारगंज, फैजाबाद

पृष्ठ 26 का शेष ......

आदमी हकलाता हुआ चुप हो गया।

महामंत्री जी आप इसके बारे में क्या सुझाव देते हैं ? भालू सिंह की तरफ देखते हुए जंगल का राजा शेर सिंह गंभीर हो गया।

इसके अपराधों को क्षमा नहीं किया जा सकता। दो पैरों पर सिर उठाकर चलने वाला यह जन्तु कुत्ते की दुम की तरह हमेशा टेढ़ा ही रहा है। इससे कुत्ता भी अच्छा है क्योंकि कुत्ता अपने मालिक का वफादार होकर दूसरों पर भौंकता है लेकिन यह शहरी जन्तु न वफादार है और सदैव अपनों पर ही भौंकता है।

इसका फैसला तो आपके हाथ में है वनाधिपति ! यह कहते हुए महामंत्री भालू सिंह ने हाथ जोड़कर विनती की।

जंगल के राजा गरजे, प्रमोदवन के वासियों, सारी बहस सुनने के बाद मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि इस आदमी नाम के शहरी जन्तु ने हम सबके प्रति, इस प्यारी धरती के प्रति, इसकी जलवायु के प्रति घोर अपराध किया है, जो क्षमा योग्य नहीं है। प्रकृति भी प्राकृतिक आपदा के रूप में सजा देकर इसको क्षमा नहीं करेगी। लेकिन मैं इतना क्रूर नहीं हूँ, और जंगल के राजा होने के नाते मेरी कुछ जिम्मेदारियाँ भी हैं। इसको सुधरने का मौका मैं अवश्य दूँगा।

मेरा अंतिम फैसला है कि इसे प्रमोदवन के सुधार गृह में भेजा जाए, जहाँ यह जानवरों के साथ रहना सीखे कि दूसरे प्राणियों और प्रकृति के साथ कैसा व्यवहार किया जाए।

राजा शेर सिंह ने महामंत्री भालू सिंह को आदेश दिया कि वह आदमी को सुधार गृह में ले जाए! अगर यह शहरी जन्तु फिर भी अपनी हरकतों से बाज न आए तो इस धरती को जंगलराज बनाने में इसकी मदद करना। इस प्रकार आदमी का अस्तित्व ही खत्म हो जाएगा।

महाराज शेर सिंह की जय, जंगलाधिपति के इसांफ की जय, अरण्याधिपति शेर सिंह की जय, पशुपति शेर सिंह की जिन्दाबाद!

प्रमोदवन के समस्त वन्य प्राणी महाशक्तिशाली राजा शेर सिंह की जय जयकार कर रहे थे। इस उच्च स्वर उद्घोष से सम्पूर्ण धरती काँप उठी।

5/48, वैशाली
गाजियाबाद-201010

गाँवों में व्याप्त प्रदूषण

उमेश कुमार शुक्ल

इस समय गाँवों में स्वच्छता, स्वप्न बनती जा रही है। प्रायः गाँवों में शौचालय नहीं हैं जिसके कारण गाँववासी मल-मूत्र त्याग खुले मैदानों में, सड़कों के किनारे या फिर तालाबों एवं पोखरों के निकट करते हैं। परिणामस्वरूप न केवल गन्दगी फैलती है अपितु जल स्रोतों का भी प्रदूषण होता है। यही कारण है कि ग्रामों में हैजा, पेचिश, टाइफाइड जैसी बीमारियाँ अभी भी अपना घर बनाए हैं। गाँवों में कूड़ा तथा अन्य पदार्थों को फेंकने की कोई उचित व्यवस्था न होने के कारण गाँव वाले अपने घरों के आसपास कूड़े-कचरे का ढेर लगाकर उसे खुला छोड़ देते हैं जहाँ मक्खियाँ, मच्छरों तथा कीटाणुओं को आश्रय मिलता है। बरसात के मौसम में स्थिति और भी दयनीय हो जाती है क्योंकि नालियों की व्यवस्था न होने के कारण बरसात का पानी, घरों से निकले गन्दे पानी तथा कूड़े के ढेरों के साथ बहता हुआ न केवल सारे क्षेत्र को गन्दा कर देता है अपितु तालाबों तथा नदियों के पानी को भी दूषित कर देता है। गाँववासी पशुपालन केन्द्र, कुक्कुट पालन केन्द्र, छोटे मोटे वधशालाओं से निकलने वाले धोवन, मल-मूत्र, हड्डियाँ, खून, मृत पशु, कतरन जैसे व्यर्थ पदार्थों को जहाँ भी स्थान मिलता है वहीं फेंक देते हैं या पोखरों, तालाबों में डाल देते हैं। इससे जल प्रदूषित हो जाता है।

गाँवों में पेय जल के मुख्य स्रोत-कुआँ, तालाब एवं नदियाँ हैं। इन सब स्रोतों में से तालाब, खुले कुएँ आदि का जल प्रायः प्रदूषित होता है। इनमें मेड़ इत्यादि न होने के कारण वर्षा का जल, गन्दा जल तथा कूड़ा जैसी प्रदूषण पैदा करने वाली वस्तुएँ मिलती रहती हैं। धोने आदि से भी जल दूषित हो जाता है। कुछ गाँव तो ऐसे हैं जहाँ 5 किलोमीटर के घेरे में पेय जल का कोई स्रोत ही नहीं है जिससे ग्रामवासी प्रदूषित जल पीने के लिए बाध्य हैं।

घरों में जो कमरे होते हैं प्रायः उनका प्रयोग बरसात तथा सर्दियों में भंडार घर के रूप में किया जाता है और रहने के लिए केवल आँगन या बरामदा ही शेष बचता है जहाँ पशु भी रहते हैं। वहीं गोबर एकत्रित किया जाता है, उपले भी पाथे जाते हैं एवं मनुष्य भी रहते हैं। वहीं पर भोजन भी बनाते हैं जिससे बच्चों, बूढ़ों और महिलाओं को, घरों में से निकलने वाले धुएँ से सबसे अधिक हानि होती है क्योंकि उनका ईंधन का प्रमुख स्रोत अभी भी लकड़ी, गोबर के उपले और कृषि अपशिष्ट (फसलों से बचे हुए डंठल) ही हैं। इनके चूल्हों में जलने से निकलने वाला धुआँ घर भर में फैलता है। इस धुएँ से क्षय, दमा जैसी बीमारियों का शिकार होना पड़ता है। इतना ही नहीं, जो मकान 4 या 5 सदस्यों के लिए उपयुक्त होते हैं उसमें प्रायः दस से अधिक व्यक्ति रहते हैं, अतः पर्याप्त वायु नहीं मिल पाती।

तालाब नवल राय
बैरहना, इलाहाबाद

पुस्तक समीक्षा

(1)

पुस्तक : जंगल की जड़ी बूटियाँ
लेखक : रामेश बेदी
प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन प्रा० लि०, 1–बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली–110002
पृष्ठ संख्या : 191, **पहला संस्करण :** 2000
मूल्य : 195.00 रुपये

आयुर्वेद और यूनानी चिकित्सा पद्धतियों में भारतीय जड़ी बूटियों की महत्ता जगजाहिर है। इधर चार–पाँच दशकों से आम आदमी को स्वास्थ्य की समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। वास्तव में यह मानव की गतिविधियों और प्रकृति से छेड़छाड़ का दुष्परिणाम है। किन्तु यदि प्रकृति के साथ हम तादात्म्य बनाकर रहें और चिकित्सा के लिए जड़ी–बूटियों का सेवन करें तो जहाँ एक ओर हम असाध्य रोगों से छुटकारा पा सकते हैं, वहीं स्वस्थ भी रह सकते हैं। संभवतः इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर अंतर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त लेखक ने इस पुस्तक की रचना की है और जनसामान्य तक जड़ी बूटियों के विस्तृत ज्ञान को पहुँचा सकने के अपने प्रयास में सफल रहे हैं।

191 पृष्ठों के सीमित कलेवर में, जहाँ तक बन पड़ा है, लेखक ने 19 औषधीय पादपों के विषय में जानकारी उपलब्ध करायी है। एक पौधे का वर्णन एक अध्याय के रूप में है। इस प्रकार कुल बीस अध्यायों में से अंतिम अध्याय 'विविध भाषाओं और स्थान के नाम' को छोड़कर सभी अध्याय अलग–अलग एरण्ड, कवीराहिन्दी, कपूर तुलसी, गोखरू, जावापिप्पली, दण्डी दरिया, निर्गुण्डी कन्द, न्याज़बो, पिण्डालु, पिप्पली, पुनर्नवा, फनियर बूटी, बन काकड़ू, भाँग, लता करंज, विधारा, सत्यानाशी, सफ़ेद सत्यानाशी और सर्पगंधा पर क्रम से प्रचुर साहित्य उपलब्ध है।

प्रत्येक पौधों का वैज्ञानिक या वानस्पतिक नाम और कुल हिन्दी और अंग्रेजी में प्रारंभ में ही दिया हुआ है। दूसरी विशेषता यह है कि जहाँ जहाँ लेखक ने आवश्यक समझा है वैज्ञानिक शोधों का भी उद्धरण दिया है। संस्कृत के नाम और पर्याय, भेद, इतिहास, व्यापारिक महत्व, विश्लेषण, प्रभाव, मात्रा और सेवन विधि, उपयोग, चिकित्सा संबंधी उपयोग जैसे शीर्षकों के अंतर्गत प्राचीन और वर्तमान जानकारियों का अद्भुत संगम देखने को मिलता है। पादपों के वर्णन के साथ ही श्वेत–श्याम चित्र भी दिए हैं जो पौधों के अलावा उनके उपयोगी अंगों को पहचानने में निश्चित रूप से मददगार हैं।

सादा किन्तु आकर्षक मुखपृष्ठ, बढ़िया छपाई, सफेद कागज़ और मुद्रण की अतिन्यून त्रुटियों के कारण पुस्तक, विद्यार्थियों, शोधकर्ताओं, चिकित्सकों और आम आदमियों के लिए अत्यंत उपयोगी है। वैज्ञानिक नामों की 'स्पेलिंग' में त्रुटियाँ खटकती हैं। यथा पृष्ठ 96 और पृष्ठ 190 पर (वैज्ञानिक नामों की सूची में लैटिन नाम के अंतर्गत) पुनर्नवा के लिए Boerhaaia के स्थान पर Boerhavia होना चाहिए। इसी प्रकार पृष्ठ 190 पर ही Aryera के स्थान पर Argyeria होना चाहिए। पृष्ठ 190 पर एक वानस्पतिक नाम और पृष्ठ 191 पर 3 वानसपतिक नाम 'इटैलिक्स' में मुद्रित हैं जबकि शेष सभी नाम काले अक्षरों में। समरूपता की दृष्टि से सभी नाम 'इटैलिक्स' में ही होने चाहिए थे। किन्तु ये त्रुटियाँ ऐसी हैं, जिन्हें विज्ञपाठक सुधार कर पढ़ लेंगे। लेखक और प्रकाशन से जुड़े सभी व्यक्ति साधुवाद के पात्र हैं। वैसे अच्छा

होता यदि वैज्ञानिक नामों के उच्चारण के लिए 'वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग' द्वारा प्रकाशित 'वृहत पारिभाषिक शब्द–संग्रह विज्ञान : खण्ड 1 एवं खण्ड 2 का उपयोग किया गया होता। इस प्रकार की पुस्तकों की इन दिनों बड़ी आवश्यकता है क्योंकि आधुनिक चिकित्सा पद्धति के दुष्परिणाम भी सामने आने प्रारंभ हो गए हैं।

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव
पूर्व अध्यक्ष, वनस्पति विभाग
सी एम पी डिग्री कालेज, इलाहाबाद–02

(2)

पुस्तक : हिन्दी में विज्ञान लेखन के सौ वर्ष
(प्रथम खंड)
संपादक : डॉ0 शिवगोपाल मिश्र
मूल्य : 250 रुपये मात्र
प्रकाशक : विज्ञान प्रसार, सी–24, कुतुब इंस्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली–16

हिंदी के प्रसार और विस्तार की तमाम बातों के बाद भी विज्ञान को अंग्रेजी में ही पठन–पाठन का विषय माना जाता रहा है। लेकिन ऐसा नहीं है कि विज्ञान को हिन्दी में लिखने–पढ़ने की चिंता नई है। हिन्दी में विज्ञान विषय के लेखन की परंपरा आज से डेढ़ सौ साल पुरानी और सुदृढ़ है। हिन्दी में विज्ञान लेखन के सौ वर्ष ऐसी पुस्तक है, जो उन्नीसवीं सदी के मध्य से बीसवीं सदी के मध्य तक विज्ञान को लोकप्रिय बनाने के लिए की गई 'कांक्रीट कोशिशों' को सामने लाती है। डॉ0 शिवगोपाल मिश्र के संपादन में 'हिन्दी में विज्ञान लेखन के सौ वर्ष' (प्रथम खंड) में 1850 से 1950 तक के 80 लेखों को संकलित किया गया है। राष्ट्रभाषा के निर्माण काल में लिखे गए ये लेख मुख्य रूप से भूगोल, भौतिकी, रसायन और नक्षत्र विज्ञान पर केंद्रित है। पुस्तक हमें बताती है कि हिन्दी में विज्ञान लेखन की शुरुआत 1840 के आस पास हुई और यह लेखन 1950 तक हर दृष्टि से अपने चरम पर था। इस तरह स्पष्ट है कि इस परंपरा को पुष्ट होने में सौ वर्ष का समय लगा। ऐसे समय में लिखा गया 'विज्ञान साहित्य' ऐतिहासिक धरोहर है। अपनी भाषा में विज्ञान के विकास को देखना भविष्य के प्रति भी राह प्रशस्त करता है। साथ में आश्वस्त भी। आज जो लोग विज्ञान लेखन को साहित्य से अलग मानते हैं उन्हें जानकर आश्चर्य होगा कि 'विशाल भारत', 'सुधा', 'वीणा', 'माधुरी', 'सरस्वती', 'हिंदी प्रदीप' और 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' जैसी साहित्यिक पत्रिकाएँ विज्ञान पर आलेखों को प्रमुखता से स्थान देती थीं। यहाँ प्रयाग की विज्ञान परिषद् के मुखपत्र 'विज्ञान' के बगैर बात अधूरी रहेगी जिसने विज्ञान लेखन को न केवल जमीन दी बल्कि खाद–पानी का भी काम किया। विज्ञान लेखन के प्रति यदि तत्कालीन नामचीन लेखकों की गंभीरता जाननी हो तो पं0 सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' का यहाँ संकलित लेख 'विज्ञान और वैज्ञानिक पत्र कला' आँखें खोल देगा जो 'सुधा' में दिसंबर 1932 को प्रकाशित हुआ था।

इस पुस्तक में बाबू श्यामसुन्दर दास, बाबू दुर्गाप्रसाद, ठाकुरप्रसाद, शुकदेव प्रसाद तिवारी, किशोरीलाल गोस्वामी, पं0 कन्हैया लाल मिश्र 'प्रभाकर' रामस्वरूप चतुर्वेदी के भी विज्ञान लेख संकलित हैं। निस्संदेह यह पुस्तक विज्ञान के हिन्दी पाठकों के लिए लाभकारी है। साथ ही संग्रहणीय भी।

– साभार

निवेदन

लेखकों एवं पाठकों से :

1. *रचनायें टंकित रूप में सुलेख रूप में कागज के एक ओर लिखी हुई भेजी जायें।*
2. *रचनायें मौलिक तथा अप्रकाशित हों, वे सामयिक हों, साथ ही साथ सूचनाप्रद व रुचिकर हों।*
3. *अस्वीकृत रचनाओं को वापस करने की व्यवस्था नहीं है। यदि आप अपनी रचना वापस चाहते हैं तो पता लिखा समुचित डाक टिकट लगा लिफाफा अवश्य भेजें।*
4. *रचना के साथ भेजे गये चित्र किसी चित्रकार द्वारा बनवाकर भेजे जायें तो हमें सुविधा होगी।*
5. *नवलेखन को प्रोत्साहन देने के लिए नये लेखकों की रचनाओं पर विशेष ध्यान दिया जायेगा। उपयोगी लेखमालाओं को छापने पर विचार किया जा सकता है।*
6. *हमें चिन्तनपरक विचारोत्तेजक लेखों की तलाश है। कृपया छोटे निम्न–स्तरीय लेख हमें न भेजें।*
7. *पत्रिका को अधिकाधिक रुचिकर एवं उपयोगी बनाने के लिए पाठकों के सुझावों का स्वागत है।*

प्रकाशकों से :

पत्रिका में वैज्ञानिक पुस्तकों की समीक्षा हेतु प्रकाशन की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिए। समीक्षा अधिकारी विद्वानों से कराई जायेगी।

विज्ञापनदाताओं से :

पत्रिका में विज्ञापन छपवाने की व्यवस्था है। विज्ञापन दरें निम्नवत् हैं:–
भीतरी पूरा पृष्ठ 1000 रु0, आधा पृष्ठ 500 रु0, चौथाई पृष्ठ 250 रु0,
आवरण द्वितीय तथा तृतीय 2500 रु0, आवरण चतुर्थ 4000 रु0

भेजने का पता :

प्रधानमंत्री
विज्ञान परिषद् प्रयाग
महर्षि दयानन्द मार्ग
इलाहाबाद–211002 (उत्तर प्रदेश)
फोन 0532–460001
ई–मेल : vigyan1@sancharnet.in
वेबसाइट : www.webvigyan.com

उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पंजाब, मुम्बई तथा आंध्र प्रदेश के शिक्षा विभागों द्वारा स्कूलों, कॉलेजों और पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत